लोकप्रियसाहित्यग्रन्थमाला - 6

सुगतकविरत्न-

शान्तिभिक्षुशास्त्रिकृतं

बुद्धोदयकाव्यम्

(प्रस्तावना-कविपरिचय-हिन्द्यनुवाद-

टिप्पणी-परिशिष्टादिभिरलंकृतम्)

सम्पादकः

संघसेन सिंहः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

मानितविश्वविद्यालयः

नवदेहली

प्रकाशकः
कुलसचिवः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
56-57, इंस्टीट्यूशनल एरिया
जनकपुरी, नवदेहली-110058

e-mail : rsks@nda.vsnl.net.in
website : www.sanskrit.nic.in

ISBN : 978-81-86111-28-4

प्रथम संस्करण : 2009 (बुद्धाब्द 2553)
प्रथमसंस्करणम् ; 2009

मूल्यम् : 120/- रु०

मुद्रकः
अमर प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-9

पुरोवाक्

बुद्धोदयं नाम गीतिकाव्यं प्रकाशयन्तो हर्षप्रकर्षं कमप्यनुभवामः। अस्य काव्यस्य प्रणेता श्रीशान्तिभिक्षुः शास्त्री बुद्धविजयमहाकाव्यस्य कर्तृत्वेन कामप्यभिख्यां गतः, तच्च महाकाव्यमधिकृत्य साहित्याकादेमीपुरस्कार-मप्यवाप। अस्मिन् गीतिकाव्ये तेन अभिनवः कश्चन प्रयोगो व्यधायि। तथाहि – जयदेवस्य शृङ्गार-भक्तियोगसमन्वितां कोमलकान्तपदावलीमसौ बुद्धस्य करुणापारावारपयोनिधौ निमज्जयन् शान्तरसस्नातां भक्तिभावतरङ्गितां च चकार। युक्तमेव जयदेवस्य स्मरणमत्र, यतो हि राधाकृष्णप्रेमामृतपयोनिधौ मग्नोऽप्यसौ महाकविर्न सौगतं तथागतं विसस्मार, दशावतारवन्दनायां च निजगाद–

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्।
केशव धृतबुद्धशरीर॥

श्रीशान्तिभिक्षुशास्त्रिणो रसमयी वाणी बुद्धस्तवने सार्थकतां गता। भावसन्ततिं गीतिबद्धामयम् अनुत्तमकौशलेन विदधाति। अयं चास्यैव प्रतिभायाः परिस्पन्द इह राजते येन बुद्धस्य अवदाने नवीनविधाया समुज्जवलः प्रयोगो जातः। मैथिलीशरणगुप्तस्य महाकाव्ये यशोधरेति संज्ञप्ते एतादृशः प्रयोगस्तेन राष्ट्रभाषाकविना साधु विहितः। प्राग्वर्तिषु महाकविषु रामकथामर्मज्ञेन तुलसीदासेन रामचरितमानसरचनाया प्राग् गीतावली-कवितावल्यादिषु प्रबन्धेषु गीतिकाव्यस्यैदृशी अवतारणा विहिता। अस्यां विधायां महाकाव्यस्य प्रबन्धात्मकता, गीतिकाव्यस्य च रसमाधुरी गङ्गायमुने इव सङ्गच्छते। तथैवास्मिन् काव्ये कवेः श्रीशान्तिभिक्षोः शास्त्रिणः वर्णनकला पदे पदे मनोहरति, जागुञ्जति चेतसि अस्य गीतीनां झङ्कृतिः। ऋतवः, लतावीरुद्वनस्पतयोऽस्यां कवितायां बुद्धं शरणमाप्ता नवीनं लावण्यमापुः। तथाहि–

अरुणरागमयललितवसनसमलङ्कृतविस्फुरिताशैः।
तरुणतरानलहसितदृशसुमनोहरविकचपलाशैः।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।

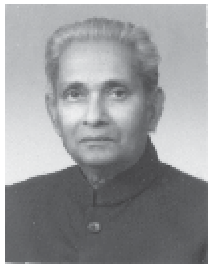
दिशि दिशि सुरभिगन्धसमुदीरणपटुतरविकसितसालैः।
नवमञ्जरीमनोज्ञविहङ्गमकूजनचारुरसालैः।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।

अथ बौद्धदर्शनधर्मविषये विविधग्रन्थप्रणेता श्रीशान्तिभिक्षुः शास्त्री एतत्काव्यप्रणयनेन

यन्मोक्षात् कृतमन्यदत्र हि मया, तत् काव्यधर्मात् कृतम्
पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादिति

इति अश्वघोषीयमुद्घोषं चरितार्थयाञ्चकार। काव्यमिदं सहृदयेषु प्रतिष्ठां प्राप्स्यतीति विश्वसिमः। अस्य पुनरुद्धारं विधाय साधु सम्पाद्य संस्थानाय प्रकाशनार्थं दत्तवद्भ्यः **आचार्यसङ्घसेनेभ्यः** साधुवादान् वितरामः।

राधावल्लभः त्रिपाठी



कविपरिचय

सुगतकविरत्न शान्तिभिक्षु शास्त्री

(जीवनवृत्त)

कविरत्न प्रोफेसर शान्तिभिक्षु शास्त्री का जन्म 27 दिसंबर 1912 ईसवी को उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ के पास बीबीपुर गाँव में हुआ था। पिता पंडित अयोध्या प्रसाद त्रिपाठी और माता रुक्मिणी देवी के वात्सल्यपूर्ण छाँव में बाल्यकाल बीता।

शास्त्री जी को सन 1938 में जयपुर संस्कृत महाविद्यालय से स्वर्णपदक के साथ साहित्याचार्य की उपाधि मिली। 1938–39 में शास्त्री जी ने जयपुर राज्य प्रजामंडल के आन्दोलन में भाग लिया और फलतः जयपुर के मोहनपुरा कैंप में छः महीने का कारावास भोगा।

शिक्षा प्राप्ति के बाद कविरत्न शास्त्रीजी ने लखनऊ के रिसालदार पार्क बौद्ध विहार के प्रमुख भिक्षु भदन्त बोधानन्द महास्थविर से प्रव्रज्या ग्रहण की और बौद्ध संन्यासी के रूप में स्वाध्याय और प्रचार कार्य में लग गये। कालान्तर में कुछ वर्षों बाद शास्त्री जी ने विश्वभारती शान्तिनिकेतन में अध्यापन कार्य प्रारंभ किया।

वहीं शान्तिनिकेतन में ही शास्त्री जी अपना बौद्ध भिक्षु जीवन छोड़ा और एक बौद्ध उपासक के रूप में 11 जनवरी 1953 में सुजाता शाक्य जी से विवाह किया और 2 सितंबर 1954 में पुत्री बोधिश्री ने परिवार को अलंकृत किया।

1956 से 1959के अन्तराल में शास्त्री जी ने जर्मनी के कार्लमार्क्स यूनीवर्सिटी लाइपछिग् (Leipzig) में अध्यापन कार्य किया और वहीं से 1959 में भर्तृहरि पर लिखे शोधप्रबन्ध पर पी॰एच॰डी॰ की

उपाधि प्राप्त की। उनके शोध का विषय था–आगमसमुच्चय Alias वाक्यपदीय ब्रह्मकांड of भतृहरि, जो प्रकाशित है।

जर्मनी प्रवास के बाद शास्त्री जी श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय के सांस्कृत विभाग में तेरह वर्षों (1959 से 1972) तक प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष रहे। सेवानिवृत्ति के बाद वे भारत लौटे और हिमाचल प्रदेश के सोलन शहर में 'शान्तिसदन' नामक अपना स्थायी निवास बनाया। 1978 में वे तीन महीने (जनवरी से मार्च तक) दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्धविद्याविभाग में विजिटिंग प्रोफेसर रहे।

साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ने शास्त्रीजी को उनके बुद्धविजयकाव्य पर 1977 वें वर्ष के पुरस्कार को 1978 में दिया। 1979 में केलानिया विश्वविद्यालय (श्रीलंका) ने उन्हें डी॰ लिट् की उपाधि से सम्मानित किया, जिसका संस्कृत नाम 'साहित्यचकवर्ती' है।

शास्त्री जी का देहान्त 15 अक्टूबर 1991 में हुआ, बौद्ध मान्यता के अनुसार उस दिन वे निर्वृत हुये। प्रोफेसर शान्तिभिक्षु शास्त्री के प्रकाशित ग्रन्थ अधोलिखित हैं–

1. महायान : हिन्दी प्रबन्ध, शान्तिनिकेतन, 1948
2. बोधिचित्तोत्पाद सूत्र शास्त्रम् : मूल में लुप्त, चीनी भाषा से संस्कृत में प्रत्यनूदित, शान्तिनिकेतन, 1946
3. अभिधर्मामृतम् : आचार्य घोषक का ग्रन्थ, मूल में लुप्त, चीनी भाषा से संस्कृत में प्रत्यनूदित, शान्तिनिकेतन, 1953
4. ज्ञानप्रस्थानम् : आचार्य कात्यायनीपुत्र का ग्रन्थ, मूल में लुप्त, चीनी भाषा से संस्कृत में प्रत्यनूदित, शान्तिनिकेतन, 1955
5. चर्यागीति कोषः : संस्कृत छाया, संस्कृत तथा अंग्रेजी भूमिका एवं टिप्पणियों सहित बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश भाषा में लिखित चर्यागीतियों का प्राचीन संकलन, शान्तिनिकेतन, 1955
6. बोधिचर्यावतारः : आचार्य शान्तिदेव का पद्यमय ग्रन्थ, हिन्दी अनुवाद तथा विस्तृत भूमिका के साथ सम्पादित, बुद्धविहार,

रिसालदार पार्क, लखनऊ 1955, द्वितीय मुद्रण 1983

7. आगमसमुच्चय Alias वाक्यपदीय ब्रह्मकांड of भर्तृहरि : डाक्टरेट के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, लाइपछिग् (Leipzig) 1963

8. धर्मारामावदानम् : संस्कृत में लघु जीवन काव्य, श्रीलंका, 1963

9. महायानचर्चा : लघु संस्कृत प्रबन्ध, श्रीलंका, 1966

10. विक्रमारच्चिवैभवम् : संस्कृत में लघु जीवन काव्य, श्रीलंका, 1968

11. पंचस्कन्धप्रकरणम् : आचार्य वसुबन्धु का अभिधर्म ग्रन्थ, भोट भाषा से संस्कृत में प्रत्यनूदित, आंग्लभाषानुवाद, भूमिका एवं शब्दकोष सहित, श्रीलंका, 1969

12. बुद्धविजयकाव्यम् : संस्कृत में पांच सहस्र श्लोकों का काव्य, भगवान् बुद्ध की जीवनी तथा धर्म एवं दर्शन, सोलन 1974. 1977 के साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित.

13. ललितविस्तर : हिन्दी अनुवाद, टिप्पणी सहित, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ संस्थान, लखनऊ, 1984

14. बौद्ध-सिद्धान्त-विमर्श, (छः व्याख्यानों का संग्रह) दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रकाशित, 1978

[ईसवीये 1988मिते वर्षे प्रकाशितायां 'विद्याभारती'पत्रिकायां
मुद्रितस्य महाकविना शान्तिभिक्षुशास्त्रिणा
लिखितस्य प्राक्कथनस्य मूलपाठः]

प्राक्कथन

बुद्धोदय संस्कृत का एक गीतिकाव्य है। यह दस प्रसंगों में गुम्फित है। प्रत्येक प्रसंग में दस शार्दूलविक्रीडित पद्य तथा तीन गेयपद हैं। यों रचा हुआ यह ग्रन्थ भगवान् बुद्ध के अवतीर्ण होने से प्रारम्भ होता है तथा बोधिलाभ एवं धर्मदेशना पर परिसमाप्त होता है।

संस्कृत में भगवज्जीवन पर एक बहुत छोटे गीतिकाव्य का अभाव बहुत खल रहा था। गीत-गोविन्द के पाठक सिंहल बौद्धों की यह उत्कट इच्छा थी कि तथागत के जीवन पर भी कुछ पद्य एवं गेयपद पढ़ने को मिलें।

सिंहल में मैंने अपनी षष्ठिपूर्ति सन् उन्नीस सौ बहत्तर के अन्त में सत्ताईस दिसम्बर को की। उससे पूर्व ही बुद्धोदय तथा बुद्ध-विजय निर्मित हो चुके थे। पांच सहस्र श्लोकों का बुद्ध विजय काव्य सन् उन्नीस सौ चौहत्तर में छप गया था और उस पर शोधकर एक शोधार्थी को एम॰ फिल तथा एक अन्य शोधार्थी को पी॰ एच॰ डी॰ की उपाधि भी मिल चुकी थी। कवि को भी साहित्य अकादमी पुरस्कार उन्नीस सौ सतहत्तर वर्ष का मिल गया था। पर बुद्धोदय की ओर किसी की दृष्टि नहीं गई थी। बुद्धोदय का उल्लेख बुद्ध-विजय में यों हुआ है–

बुद्धोदयं मया गीतं स्वल्पग्रन्थं मनोरमम्।
तथाप्यतृप्तं चित्तं मे नित्यं बुद्धपरायणम्[1]**॥**

वाराणसी के एक मित्र इसे प्रकाशनार्थ ले गये थे। पर प्रकाशन हुआ नही और वे मित्र भी अब अदृष्ट हो गए। इधर 'विद्या भारती' पत्रिका के सम्पादक मंडल ने इसे अपनी पत्रिका में प्रकाशित करने की

1. श्लोक 1, सर्ग–14, बुद्धविजय काव्य।

योजना बनाई है। अतः इस वर्ष (उन्नीस सौ अट्ठासी ई॰) २५३२ वीं बुद्ध पूर्णिमा की शुभ बेला पर इसका साक्षात्कार पाठकों को हो सकेगा। इस अभिनन्दनीय कार्य के लिए उक्त पत्रिका के सम्पादक मंडल को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। पांडुलिपि का टंकण मेरी पत्नी सुजाता का किया हुआ है, तथा इस गीतिकाव्य के निर्माण मे उनका अनुरोध एवं आग्रह बहुत अधिक रहा है। इसलिए उनके प्रति कृतवेदिता प्रकट करने का यह बहुत ही उचित क्षण है।

अस्तु। बौद्ध जगत् को मैं अपनी यह कृति सादर अर्पित कर रहा हूँ। कृपया इसका अवलोकन कर मुझे अनुगृहित करें।

निवेदक

शान्तिभिक्षुशास्त्री

शान्ति सदन, सोलन (हि॰ प्र॰)

नोट कविरत्न शान्तिभिक्षु शास्त्री ने अपने प्राक्कथन के साथ तिथि नहीं अंकित की है। वह 1 मई 1988 (बुद्धाब्द 2532 बुद्ध पूर्णिमा) के कुछ दिन या कुछ सप्ताह पहले की होगी। (इति सम्पादकस्य)।

प्रस्तावना

'बुद्धोदयकाव्य' सुगतकविरत्न शान्तिभिक्षुशास्त्री द्वारा रचित एक भक्तिरसात्मक गीतिकाव्य है। इसमें भगवान् गौतम बुद्ध के जीवन के दस प्रसंगों को सरस बन्धों में बाँधने के लिये चुना गया है। ललितपदावली, कवि-कल्पना की उड़ान, अलंकारों की छटा, काव्यरस का अनुपम परिपाक आदि कुछ ऐसे पक्ष हैं, जिनके कारण यह काव्य संस्कृत के प्राय: सभी गीतिकाव्यों को बहुत पीछे छोड़ देता है। भक्तिरस के चित्रण में महाकवि शान्तिभिक्षु बेजोड़ हैं। कुछ एक उदाहरण पर्याप्त होंगे–

मैत्री-ज्ञान-विराग-गुणानां धर्माणां त्वं धाता।
जय जय नाथ त्वमनाथानामसि सौभाग्यविधाता।।

शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।

श्लोक 95/ॠ

चेत:क्लान्तिविनोदनाय मदनोन्मादव्यवच्छित्तये
रागान्धस्य जनस्य सुष्ठुवचसा धीरप्रशान्ताश्रयम्।
साकल्येन तथागतस्य चरितान्युद्गातुकामात्मना
काव्यं बुद्धपरायणेन कविना शान्त्येकसारं कृतम्।।

श्लोक 98

महाकवि ने इस पूरे काव्य को दस प्रसंगों (सर्ग के स्थान पर 'प्रसंग' शब्द का प्रयोग) में बांट रखा है। वे इस प्रकार हैं–

प्रथम: प्रसंग:	–	जन्ममंगलम्
द्वितीय: प्रसंग:	–	असितागमनम्
तृतीय: प्रसंग:	–	गोपापरिग्रह:

चतुर्थः प्रसंगः	–	निमित्त–दर्शनम्
पंचमः प्रसंगः	–	वनविहारः
षष्ठः प्रसंगः	–	अभिनिष्क्रमणम्
सप्तमः प्रसंगः	–	तपश्चरणम्
अष्टमः प्रसंगः	–	माराविजयः
नवमः प्रसंगः	–	संघप्रतिष्ठापनम्
दशमः प्रसंगः	–	बुद्धकायलक्षणम्

पूरे काव्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द में रचे हुये सौ श्लोक, तीस गीत और 240 गेयपद हैं। प्रत्येक प्रसंग में दस–दस श्लोक (शार्दूलविक्रीडित–छन्दवाले) हैं और उनके बीच में तीन–तीन गीत पिरोये गये हैं। कवि ने प्रत्येक गीत का अत्यन्त उपयुक्त शीर्षक दिया है और उन गीतों को आठ–आठ की संख्या में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ के क्रम में रखा है। इस प्रकार काव्य को बड़े विज्ञानिक विधि (Scientific Method) में प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने यही विज्ञानिक क्रमबद्धता अपने दूसरे काव्य, बुद्धविजयकाव्य–जो एक महाकाव्य है– में अपनाई है। वहाँ पूरे काव्य को पूर्वार्ध–उत्तरार्ध में बाँटते हुये उन्नीस पर्वों में रखते हुये, तदनन्तर कथावस्तु को सौ सर्गों में प्रस्तुत किया है। प्रत्येक सर्ग में पचास श्लोक अनुष्टुभ् छन्द में और एक (अन्तिम) श्लोक वंशस्थ छन्द में रखा गया है।

कथासार

'बुद्धोदयकाव्य' के पहले प्रसंग का शीर्षक है– जन्म–मंगलम्। इसमें बोधिसत्त्व सिद्धार्थ के जन्म की कथा बताई गई है। इस काव्य की विशेषता यह है कि नायक के जन्म की घटनाओं का वर्णन घटनाक्रम से नहीं किया गया है, बल्कि भक्ति–भाव में गीतों के माध्यम से बोधिसत्त्व के जन्म का उत्सव दर्शाया गया है। जन्म की घटना को बुद्धांकुर के प्रकट होने के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

गीतैर्वाद्यविजृंभितैरुपचितैः कंठोत्थसप्तस्वरैर्
नृत्यैः साभिनयैश्चलत्पदकरैर्नेत्रार्धसंवीक्षितैः।
पुंसां हर्षवशात् सतालमुखरैर्वामांगनानां कृतै-
र्लुंबिन्यामभिनन्दितोऽजनि नृणां क्षेमाय बुद्धांकुरः॥

[बाजों से उत्कर्ष पाये हुये, कंठ से उठे सातों स्वरों से समृद्ध, हाथपैर चला कर, अधखुली आँखों से देखने की क्रिया करके, अभिनय से युक्त, ताली बजा-बजा कर उमंग से भरे स्त्री-पुरुषों के द्वारा किये गये गीतों और नृत्यों द्वारा अभिनन्दित, मानवों का कुशल-क्षेम करने के लिये, बुद्धांकुर लुंबिनी में उत्पन्न हुआ।][1]

इस प्रसंग में बुद्धोदय (बुद्ध का उदय) का क्या-क्या प्रभाव जगत की विविध वस्तुओं पर पड़ता है, उसका विस्तृत वर्णन किया गया है। दृष्टांत के रूप में अधोलिखित श्लोक–

शान्तं वैरमहो वृकी मृगसुतान् स्तन्येन पुष्णात्यहो
तिग्मैः संतनुते करैरपि लिहंस्तापं न सुर्योऽप्यहो।
भिन्नो लोकगणो विवादकलहैर्हन्तैक्यमद्याश्नुते
क्षुब्धं सर्वमिदं प्रशाम्यति जगद् भोः पश्य बुद्धोदयम्॥

[अहो! वैर-भाव शान्त हो गया, अहो! वृकी (मादा भेड़िया) अपनी छाती के दूध से हिरन के छौनों को पोस रही है। अहो! सूर्य भी अपनी तीखी किरणों से छूता हुआ भी नहीं झुलसा रहा है। अहा! लड़ाई-झगड़ों से फूट में पड़े लोग आज मेल-मिलाप कर रहे हैं। अहा! देखो, बुद्ध के उदय को देखो। अशान्त जगत् आज शान्त हो रहा है।]

दूसरे प्रसंग का शीर्षक है—असितागमनम्। लुंबिनी उपवन में राजकुमार के जन्म की बात सुनकर और वह भी विशिष्ट गुणों वाले, असित मुनि राजमहल में उन्हें देखने गये। राजा ने उनका समुचित

1. यहाँ बुद्धांकुर का उत्पन्न होना एक घटना के रूप में अंकित है। यह संवृति सत्य या व्यवहार सत्य है। बौद्ध दर्शन की अवधारणा है कि यह चित्त की सततता के लंबे क्रम में एक बिन्दु मात्र है, जिसे परमार्थ सत्य के रूप में इंगित कर पाना भी असंभव है, क्योंकि चित्तसततता को क्षणों में विभाजित नहीं किया जा सकता।

स्वागत-सत्कार किया। मुनि ने राजा से शिशु को देखने की इच्छा व्यक्त की। फलतः राजा ने धात्री की गोद से बच्चे को लेकर मुनिवर के संमुख प्रस्तुत किया। मुनिवर ने बच्चे में बुद्ध-बीज के अंकुर देखा और देखा बत्तीस महापुरुषलक्षणों और अस्सी अनुव्यंजनों को–

लोकालोकमनोहरं शिशुवरं सर्वार्थसिद्धिप्रदं
पूर्णं लक्षणसंपदा विपुलतां रूपश्रियो बिभ्रतम्।
साक्षादंकुरितं तथागतमहावृक्षस्य बीजं गणे
शाक्यानामवलोक्य शाक्यनृपतिं ब्रह्मर्षिरेवं जगौ॥

[जगत के आलोकभूत और मनोहारी, सभी मनोरथों की सिद्धि देने वाले, (महापुरुषों की) लक्षण-संपत्ति से पूर्ण, रूप-शोभा की विपुलता के पोषक, बुद्धरूपी महावृक्ष के शाक्यगण के बीच साक्षात् अंकुरित हुये बीज, उन शिशुवर को देख शाक्यराज से (उन) ब्रह्मर्षि ने यों गीत में कहा।]–"इस बालक में जगत को धर्म का मार्ग अवश्य मिलेगा। बालक के चक्रपरिमंडित पैरों को देख कर कहा कि यह बालक मनुष्यों और देवों दोनों को अपने वश में रखेगा।" इसके बाद ही ब्रह्मर्षि की आँखों में आँसू भर आये और वे आकाश की ओर देखने लगे। ऐसा होने पर स्वभावतः राजा के चिन्तित होने पर मुनिवर ने आश्वस्त करते हुये कहा–"हे राजन, मुझे यों रोते हुये देख कर तुम्हें कातर नहीं होना चाहिए। मैंने जो जो बात कही है, वह सब सच उतरेगी।"

मामेवं प्ररुदन्तमैक्ष्य नृपते त्वं कातरो मा स्म भूर्
यद्यत् किंचिदवोचमस्मि सकलं तत्तत् ध्रुवं सेत्स्यति।
इत्येवं समुदीर्य शाक्यनृपतिं दत्वाशिषं मंगलां
विप्रो राजकुलात् स्वमाश्रममगात् सर्वैर्जनैर्वन्दितः॥

[हे राजन्, मुझे यों रोते देख तुम्हें कातर नहीं होना चाहिए। मैंने जो जो बात कही है, वह सब सच्ची उतरेगी। ऐसा शाक्यराज से कहकर, उन्हें मंगलमय आशीर्वाद देकर, सब लोगों के द्वारा वन्दित विप्र असित अपने आश्रम चले गये।]

तीसरे प्रसंग में गोपा के साथ सिद्धार्थ कुमार का परिणय वर्णित है। कुमार अवस्था में गुरुओं का आश्रय लेकर अत्यन्त बुद्धिमान् सिद्धार्थ कुमार विद्याओं में पारंगत हो गये। कुमार के नये यौवन को देख कर राजा ने उनके लिये उत्तम वधू चुनने की बात सोची। उन्होंने कुमार के मित्रों के माध्यम से यह जानना चाहा कि कुमार किस प्रकार की वधू (बहू) चाहते हैं। सिद्धार्थ कुमार ने अपने वाचनिक (सन्देश) के माध्यम से राजा को अवगत कराया–

1. ऐसी वधू जो रूप में रमणीया हो, अपने गुणों से चित्त प्रसन्न करे, अपने पति में अनुरक्त हो, बाहर के धन–दौलत, भूमि आदि के प्रति निःस्पृह हो और धर्मचर्या में एकमात्र सहायक हो।

2. उच्चकुल में पैदा होने पर भी जिसमें अभिमान न हो और हीनकुल में उत्पन्न होने पर भी जिसमें हीनभावना न हो।

3. जो आवाह अथवा विवाह के अवसर पर जाति पर विचार करने वाली न हो, क्योंकि गुण किसी की जाति को देख कर न आते हैं और न जाते हैं।

4. पति के प्रोषित होने पर परगतचित्ता (पराये पुरुष के विषय में सोचने वाली) न हो, भाग्य के उलट–पुलट से निर्धन होने पर भी पातिव्रत धर्म पर कायम रहे।

5. सास को माँ के समान माने, ससुर को पिता के समान माने, कभी भी प्रमाद (गफलत, आलस, लापरवाही) करने वाली न हो।

6. विद्याओं, कलाओं में कुशल हो, पुण्य में अटल मतिवाली हो, शील को गहना मानने वाली हो, सोने, रत्नों आदि के गहनों की ओर मन न दौड़ाने वाली हो।

7. खाने–पीने में मात्रा पहचाने, मितव्यया हो, घर की वस्तुओं की परवाह करे और कुलधर्म का पालन करे।

8. पति के लिये उपकारक हो, लोगों पर करुणा करने वाली हो, सदा हित–बुद्धि हो और चित्त में शुभ चिन्तन करने वाली हो।

पुत्र के मनोरथ को जान कर राजा ने सब गुणों से युक्त कन्या खोजने के लिये ब्राह्मणों को उस काम में लगाया और उन ब्राह्मणों से दंडपाणि की पुत्री को अपने पुत्र के लायक जान कर और उसे सिद्धार्थ की दृष्टि में डालने के प्रयोजन से एक उत्सव का आयोजन किया। उस उत्सव में कन्याओं को उपहार बाँटते हुये, अन्य किसी की भी तिरछी चितवन से कुमार अपने हृदय में चंचल न हुये, किन्तु जिस क्षण गोपा को उपहार बाँटने लगे और वह मुस्कराती हुई उनके पास गई, उसी क्षण उन्होंने उसे अपने चित्त के साथ अपनी अँगूठी दे डाली।

गोपा के प्रति अपने पुत्र के अनुराग को जान कर राजा ने दंडपाणि से कन्या देने की बात की, किन्तु श्रेष्ठ वीर को ही कन्या देने की इच्छा से, उन्होंने (दंडपाणि ने) ऐसा नहीं किया। अतः अपने यश की रक्षा के लिये तथा गोपा का परिग्रह करने के लिये कुमार सिद्धार्थ ने राजा से गण के बीच शिल्प दिखलाने के लिये घोषणा करने की बात कही। घोषणा हुई। निर्धारित अवसर पर सिद्धार्थ कुमार द्वारा शाक्य-कोलिय-गणों के सामने सब के हराये जाने पर बोधिसत्त्व को विजयी देखकर महामानी दंडपाणि ने अपने हाथों अपनी पुत्री को कुमार को सौंप दिया।

ससुराल रहती हुई, अपने पति (और राजा के पुत्र) के प्रेम में पगी हुई, गुरुजनों की भक्ति में रमी हुई, परिजनों के प्रति मैत्री भावना में लगी हुई, अपनी पुत्रवधू गोपा को सुखसमृद्धिसहित सौभाग्य के आशीर्वाद द्वारा आनन्दित कर उसे माथे से चूमकर शाक्यण्ज अत्यन्त हर्षित हुये।

श्रीबुद्धबीज के अंकुरभूत बोधिसत्त्व जिस प्रकार सब गुणों से युक्त थे, उसी प्रकार करुणा और प्रज्ञा की मूर्ति भगवती गोपा भी सब गुणों से युक्त थीं। उन जवानों (युवा-युवती) के उज्ज्वल सख्यभाव का उपमान उन्हीं का सख्यभाव था। उसे देख कर रति और काम के मन में भी उनके प्रति उत्सुकता जाग उठी थी।

यादृक्सर्वगुणान्वितः स भवाञ्छ्रीबुद्धबीजांकुरस्
तादृक्सर्वगुणान्विता भगवती सासीत् कृपाधीघना।
अन्यान्योपमसाहचर्यमभवद् यूनोस्तयोरुज्वलं
तद् दृष्ट्वा रतिकामयोरपि मनो जातं तयोरुत्सकम्।।

चौथा प्रसंग निमित्त–दर्शन का है। गोपा को शिल्प–स्पर्धा में प्राप्त करने के बाद शाक्यगण में कुमार सिद्धार्थ की शाख बढ़ गई। वे पिता के कार्यों में तरह तरह से हाथ बँटाने लगे। किन्तु एक मात्र स्वार्थ में लगे हुये, हिंसा पर उतारु, शस्त्र परायण गणों को और घर में भी भेद–भाव–भरे बन्धुओं को देख कर कुमार उद्विग्न हुये। झगड़े–झंझटों से त्रस्त लोगों को देख कर कुमार के मन में विविध खयाल (विचार) आने लगे। वे सोचते थे कि इन सबसे बचने की राह क्या हो सकती है? क्या दुनिया में एकता की राह बन सकती है? ये ही सब सवाल कुमार की चिन्ता के विषय थे। मन बहलाने के खयाल से नगर से बाहर जाने के लिये रथ पर बैठे। सारथी हाँक रहा था। सारथी रथ हाँक रहा था। राजा की आज्ञा से रास्ते के दोनों ओर मार्ग को मनोहरी बनाया गया था। चारों तरफ आनन्द का वातावरण था, किन्तु इसी बीच कुमार को एक बूढ़ा दिखाई पड़ा। कुमार के द्वारा पूछे जाने पर सारथी का जवाब बड़ा मार्मिक था–

अयमपि पुरा बद्धदृढवर्मा।
समरे जयी बभूव सुकर्मा।।
परिभूतः परमेष इदानीम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।

[इसने भी पहले दृढ़ कवच पहना था, युद्ध में विजयी हुआ था। अच्छे काम किये थे। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।]

बुढ़ापा का दृश्य देख कर कुमार अत्यन्त संविग्न होकर महल की ओर लौट पड़े और उसी प्रकार की दिनचर्या में लग गये। वहाँ पर महल के घेरे में राजकुमार ऊब गये और पुनः मन बहलाने के लिये नगर से बाहर जाने के क्रम में रथ में सवार होकर निकलने लगे, तभी

नगर की वीथि में उन्होंने एक रोगी को देखा। सारथी से पूछने पर उसका उत्तर–

तपति तनुरस्य मनो व्याकुलत्वमेति।
यातं सुखमस्य चायं वेदनामुपैति।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।

[इसका शरीर जल रहा है। मन व्याकुल हो रहा है। इसका सुख चला गया है। इसे पीड़ा हो रही है। यहाँ यह भोग से वंचित है। इसे रोग सता रहा है।]

रोग से पीड़ित मनुष्य को देख कर कुमार और भी संविग्न हो गये। श्रीबुद्धबीज के अंकुरभूत वे आगे न बढ़ सके और सरथ (रथ से साथ) ससारथी (सारथी के साथ) महल की ओर लौट आये। पर मन में अपार दुख से दुखी हुये। जगत को रोगमय पाकर दुखी कुमार महल में सब प्रकार के सुखों के बीच मन से दुखी थे। सारथी के साथ रथ पर बैठ कर वन की ओर प्रस्थान किया। किन्तु वीथि में ही उन्होंने एक शव को देखा, जिसे लोग उठा कर ले जा रहे थे। "यह कौन है?" ऐसा पूछने पर सारथी ने बताया–

जातो जातो जन इह नश्यति।
अन्ते कोऽपि न चैनं पश्यति।।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।

राजकुमार सोचने लगे कि क्या झगड़ा–लड़ाई ही जीवन है? क्या मेल–मिलाप संभव है? हिंसा ही क्या लोगों का कानून है? क्या जगत में दयाभाव भी है? आदि आदि सोचते हुये वे राजमहल की ओर लौट आये।

पाँचवे प्रसंग का विषय वन–विहार है। शाक्यगण की महत्त्वाकांक्षाओं के केन्द्र में कुमार थे। क्या कुमार दान देना, दिग्विजय करना, आदि करके चक्रवर्ती पद प्राप्त नहीं करेंगे? क्या वे शाक्यगण, राजा, गौतमी,

भार्या को छोड़कर लोगों के बीच भिक्षा–चर्या पर जीवित रहने वाला बनेंगे? राजा और शाक्यगण इस प्रकार की सोच में पड़े थे। इन्हीं सब उधेड़–बुन में पड़े हुये सिद्धार्थ कुमार वन में मनबहलाव के लिये रथ पर चढ़कर सारथी के साथ चल पड़े। वहाँ रास्ते में उन्होंने एक यति को देखा, जो तृष्णा–त्याग के कारण प्रसन्न थे। ये कौन हैं ऐसा पूछे जाने पर सारथी न बताया–ये धर्म–परम (धर्मप्राण) व्यक्ति हैं। कुमार ने यति के पास जाकर पूछा–"भगवन्, इस दुखी जनता के बीच आप प्रसन्न हैं, आप पीड़ा रहित हैं। इसका कारण क्या है? यति का उत्तर स्पष्ट था–

अनिकेतनो भैक्ष्यमतिसुलभं यथासुखं विहरामि।
बद्धो नास्मि कयापि केनचित् स्वच्छन्दं विचरामि॥
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्॥

[मेरा घर–बार नहीं है, भिक्षा मुझे बड़ी सरलता से मिल जाती है, जैसे अच्छा लगता है वैसे रहता हूँ। किसी स्त्री या पुरुष के बन्धन में नहीं हूँ। जहाँ चाहता हूँ वहाँ विचरण करता हूँ। चित्त अब बन्धनहीन है, अब कामिनी–कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त हूँ।]

अनिकेतनत्व के पक्ष में यति की बातें सुनने पर कुमार का मन कुछ स्वस्थ हुआ। उसी विषय पर सोचते हुये कुमार के राजमहल की ओर लौटते समय गाती हुई कृशागौतमी नाम की कन्या का गीत सुनाई पड़ा। गीत का बोल था–

रोम-रोम-पुलकितं तृप्तिरन्यैव हि कापि शरीरे।
शान्तिः समुन्मिषति सुतरां काचिन्मम मनस्यधीरे॥
सा निर्वृतात्र कान्ता।
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता॥

[मेरा रोम रोम पुलकित हो रहा है, शरीर में कोई अपूर्व तृप्ति हो रही है। मेरे अधीर मन में किसी ओर ही शान्ति का उदय हो रहा है। वह स्त्री यहाँ निर्वृत है, जिसका भाग्यविधाता पति ऐसा सुन्दर है।]

इन घटनाओं का प्रभाव कुमार पर अत्यधिक पड़ा और वे स्वयं अपने निश्चय को व्यक्त करने राजा के पास गये और बोले–"यह जीवन व जगत असार है, अध्रुव है शून्य है। मुझे वन में जाकर तपश्चर्या करने और मार की सेना पर विजय पाने की अनुमति दें।" इस क्रम में राजा और कुमार के बीच गृहस्थ–जीवन और यति–जीवन की उपादेयता और प्रासंगिकता को लेकर लंबा संवाद चलता है और अन्त में राजा कुमार को यह कर राजमहल की ओर जाने की सलाह देते हैं कि यह समय मौज–मस्ती का है, न कि वन में जाकर वैराग्य धारण करने का।

नायं ते समयो वनोपगमने दोषाढ्यमेतद् वयो
भोगार्हस्य गृहान् विसृज्य विपिनाद् व्यावर्तनं गर्हितम्।
मा गाः सम्प्रति वर्तते तव बहुः कालेऽत्र कर्तुं तपो
निर्दिश्यैवममुं जगाद नृपतिर्मोदस्व गत्वा गृहान्॥

["यह तुम्हारे वन जाने का समय नहीं है। यह बहुत गड़बड़ी की उम्र (वयस) है। कोई भी व्यक्ति भोग–योग्य घर छोड़ दे और वन से फिर घर लौटे, तो उसकी निन्दा होती है। अभी मत जाओ। तुम्हारे लिये तप करने का अभी बहुत समय है। इस प्रकार समझा बुझा कर राजा बोले–'महलों में जाकर मौज करो'।"]

छठवें प्रसंग में राजकुमार सिद्धार्थ का अभिनिष्क्रमण वर्णित है। जो जो बातें शान्ति के योग्य सोचता हूँ, राजकुल उन पर ध्यान नहीं देता। राजा भी निवृत्ति मार्ग के प्रति उदासीन है। वे हमेशा प्रवृत्ति मार्ग की ओर अग्रसर करते रहते हैं और मुझे बच्चा समझ कर हमेशा खेलने कूदने की हिदायत देते रहते हैं। इस प्रकार के विचार कुमार के मन में उठते रहते थे कि शाम ढल गई। संध्या–वन्दन, भोजन आदि से निवृत्त होकर कुमार राजप्रासाद के ऊपरी विमान (महल) पर गये, जहाँ सुन्दरियाँ उन्हे गीत वाद्य से आनन्दित करने में लग गईं। उनके गीत का बोल था–

त्वयि सति भवनमिदं प्रविभाति तिरस्कुरुते सुरसदनम्।
त्वमिह यत्र विहरसि वनमपि तद् भवति नगरमदशमनम्॥

रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।

[तुम्हारे रहते रहते यह भवन बहुत सुहाता है, इसके आगे देव-भवन का भी कोई आदर नहीं होता। तुम जहाँ विहार करते हो, वह वन भी नगर के अभिमान को मिटाने वाला है। सोने के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान मर्यादा मसल डालने वाला है। पराये अवलंब के बिना ही आनन्द में मग्न, हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।]

देर रात तक सुन्दरियों का वह गीत-वाद्य का प्रोग्राम (क्रम) चलता रहा। कुमार का संगीत के प्रति चाव होते हुये भी वे चिन्तापर (चिन्तित) से थे और इसी क्रम में उन्हें योग-निद्रा आ गई। उनके सो जाने पर वे सभी सुन्दरियाँ भी सो गईं, किन्तु उनके शरीर का जो जुगुप्सित (घिनौना-घिनौना) अंश था वह जाग पड़ा और अपना वास्तविक रूप दिखाने लगा। सुन्दर वस्त्रों से ढकी हुई सुन्दरियाँ भी श्मशान में फेंकी लाशों (शवों) जैसी लग रही थीं। उनकी चेष्टाएँ भद्दी (विकृत) थीं। सिद्धार्थ कुमार बेटे के साथ सोती हुई गोपा को देखकर छन्दक सारथी और कन्थक घोड़े की सहायता से रात में ही नगर से निकल पड़े। वे सुबह होते होते अनोमा नदी के पार पहुँच गये और सूर्योदय होते होते प्रव्रज्या ले ली। छन्दक और कन्थक को विदा करते हुये अपने सगे संबन्धियों और शाक्यगण के लोगों के लिये उन्होंने एक बड़ा मार्मिक सन्देश भेजा। उस सन्देश का पहला पद है–

विरसहृदयं न मे यद् भवनमत्यजम्।
तत्र तन्नास्ति यद् वश्मि तेनात्यजम्।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्मं वरमनुसंधातुम्।।

[जो मैंने घर छोड़ा, उससे यह न समझना कि मेरे हृदय में स्नेह नहीं रहा। जिसकी मुझे चाह थी, उसका वहाँ अभाव था, इसलिये मैंने उसे छोड़ दिया। मैं शरण खोजने के लिये ही जा रहा हूँ। मैं उस उत्तम

धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिये जा रहा हूँ, जिसमें परस्पर की वंचना का भाव न हो।]

अपने सन्देश के अन्त में कुमार ने यह बात भी कही–"तत्त्वलाभ कर मैं (कपिलवास्तु) नगर में आऊँगा। अब मैं शरण-प्राप्ति के लिये आगे प्रस्थान कर रहा हूँ।"

छन्दक सारथी कन्थक घोड़े के साथ लौट कर नगर में आता है और राजा, गौतमी, पुत्रवधू गोपा को बोधिसत्त्व का सन्देश देता है। विवश राजा कुछ इस प्रकार आश्वस्त होते हैं कि कुमार ने तत्त्वलाभ प्राप्त कर घर लौटने की बात की है, वे कुछ स्वस्थ हुये (किंचित् स्वास्थ्यमुपाश्रितः, श्लोक सं॰ 59)। इसके बाद बोधिसत्त्व सिद्धार्थ वन में शान्ति में मन लगाते हुये, आश्रमों में मुनियों से तत्त्वपरिपृच्छा करते हुये, मुनिद्वय आराड कालाम तथा उड्रक रामपुत्र के ध्यान और समापत्ति के मार्ग का अभ्यास कर, उसके पार जाकर और उसे अपर्याप्त पाकर उरुवेल वन में पाँच यतियों के साथ तपश्चर्या करने में जुट गये।

सातवें प्रसंग में बोधिसत्त्व सिद्धार्थ की तपश्चर्या का वर्णन है। उरुवेल वन और उसके आसपास के क्षेत्र में यह वार्ता (प्रवृत्ति) फैल गई कि शाक्य गणराज्य के राजकुमार ने अपने गण, पिता, माता, बेटे के साथ पत्नी को छोड़ कर प्रव्रज्या ग्रहण की है, मगधराज बिंबिसार के द्वारा उपहृत आधे राज्य को भी विनम्रता के साथ अवीकार कर दिया है और अब वहाँ पर तपश्चर्या में तत्लीन हैं। यह वार्ता सेनानी की पुत्री सुजाता ने भी सुनी। तत्पश्चात् वह अपनी सहेलियों के साथ बोधिसत्त्व सिद्धार्थ के समीप गई और उनसे निवेदन किया–

इह वस निजचर्यया विधेहि ग्रामान् अतिप्रणीतान्।
तव चरणांकनलब्धवैभवान् पूजास्पदमुपनीतान्॥
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा॥

[यहाँ निवास करो। अपनी चर्या से गाँवो को परम पवित्र बना दो। तुम्हारे चरणचिह्नों से इन्हें वैभव मिले। ये पूजा के स्थान बने। इस

वन मे अच्छे स्थान हैं, अच्छी हवा है। हमारे गाँव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।]

उसने आगे भी कहा–

प्रसृतं यशस्तवातिनिर्मलं सेवां जनः करिष्यति।
तपसे यदपेक्षितं वस्तु तत्सकलं समाहरिष्यति॥

[तुम्हारा अत्यन्त निर्मल यश फैला हुआ है। लोग सेवा करेंगे। तपस्या के लिये जो वस्तु चाहिये, वह ला देंगे।]

वहाँ पर बोधिसत्त्व ने 'इस वनस्थली के सहारे मुझे परमार्थ की सिद्धि होगी' ऐसा हृदय में ठान कर छः वर्षो तक विविध तपस्याएँ की। घोर तपस्या के कारण दुर्बल हो गये। मरने मरने की स्थिति हो गई, फिर भी तत्त्वलाभ नहीं हुआ। फलतः उन्हें लगा कि यह तत्त्व पाने का मार्ग नहीं है। शारीरिक स्वास्थ्य-लाभ के लिये जब वे स्थूल भोजन लेने लगे तो उनके पाँच साथी यति उन्हें हीन ढंग से, तिरस्कारपूर्वक छोड़ कर अन्यत्र चले गये। उनकी बात की बोल यों है–

त्यक्तं राज्यं त्यक्ता दाराः।
स्वजनाः शाक्याः सपरीवाराः॥
तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्॥

[राज्य छोड़ दिया, पत्नी छोड़ दी। अपने स्वजन शाक्यों को परिवार के साथ छोड़ दिया। तप किया, पर तत्त्व न मिला। अब खा पीकर यहाँ इन्हें तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।]

उन पाँच साथी यतियों के चले जाने के बाद शारीरिक स्वास्थ्य लाभ करने पर, लोगों में बोधिसत्त्व सिद्धार्थ को बड़ी प्रसिद्धि मिली और वे 'महाश्रमण' के नाम से जाने जाने लगे। इस प्रकार वे अपने अनुपम पराक्रम के साथ ध्यानविधि के माध्यम से तत्त्व की प्राप्ति के लिये साधना में जुट गये। अन्त में वैशाख की पूर्णिमा के दिन सेनानी की पुत्री सुजाता ने एक विशेष पायस (खीर) तैयार कर सोने के पात्र में रख कर 'महाश्रमण' को खिलाने के ख्याल से भिक्षाटन के लिये उन्हें विचरते

देख कर, अपने निवास पर बुला कर अर्पित किया। बोधिसत्त्व ने उसे लेकर नदी के किनारे जाकर ग्रहण (उदरस्थ) किया। तत्पश्चात् उस सोने के पात्र को नदी में बहा दिया और धर्मकथा के द्वारा सुजाता का पुण्यानुमोदन कर अनुपम तत्त्व-लाभ के लिये बोधिवृक्ष (यह नाम बाद में पड़ा) की ओर चले गये और सुजाता जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर चल पड़ी।

आठवें प्रसंग में मार के अविजय (=पराजय, हार) का वर्णन है। बोधिसत्त्व स्वस्तिक नामक घसियारे से प्राप्त घास के आसन पर पालथी मार कर आसन लगा कर बैठ गये। उनके इस कार्य से ब्रह्मादि देव प्रसन्न हुये, किन्तु मार अत्यन्त रुष्ट हुआ। रति के साथ सुन्दरियों से घिरा हुआ भयंकर मुँह वाले शस्त्रधारी तरह तरह के जीवों के माध्यम से भय उपजाने में लग गया। देव-गण ने उसे शान्त करने के विचार से उससे यों कहा–

न हि नितंबिनी कापि करोति शिशोश्चेतस्युन्मादम्।
किन्तु शिशुः प्रभवति कर्तुं युवतीजनमनःप्रसादम्।।
विरमास्माद् व्यवसायात्।
मार, कामहिंसाभ्यां सहितादतिकुत्सितादुपायात्।।

[जवानी से भरी कोई स्त्री बच्चे को मतवाला नहीं बना सकती। हाँ बच्चा जरूर जवान औरतों का मन प्रसन्न कर सकता है। हे मार, तुम इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपायवाले प्रयत्न को छोड़ दो।]

हे मार, सिद्धार्थ को देखने पर तुम्हारी सुन्दरियों के मन में श्रृंगार-भाव उपजेगा, पर वे उनके रूप से लजा जायेंगी और उनमें हाव नहीं उपजा सकेगा। वे अपना अंगराग छोड़कर विभूति मल कर तप करती विचरने लगेंगी। हे मार, इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो, आदि आदि। देवताओं की चेतावनी के बावजूद मार ने बोधिसत्त्व पर पुष्प-बाणों की वर्षा से प्रहार किया, हिंसक जीवों से उन्हें बार बार डराया, पर सफल नहीं हुआ और

अन्त में थक कर जमीन पर गिरने लगा, तभी उसकी परम प्रेयसी रति ने उसे दोनों हाथों से थाम लिया।

मार के हार मानने पर विवश होकर रति बोधिसत्त्व को नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगी–

त्वं शरणं शरणं वचनं ते शरणं शरणमुपेताः।
क्लेशहरेण गुणेन गिरस्ते सामग्र्येण समेताः।
जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।

[तुम शरण हो, तुम्हारा वचन शरण हो, तुम्हारे शरणागत शरण हैं। तुम्हारे वचन क्लेश हरने वाले तथा एकता के गुण से युक्त हैं। हे धर्मनिधान, तुम्हारी जय हो।]

इस प्रकार रति ने बोधिसत्त्व सिद्धार्थ की बार-बार स्तुति की क्योंकि उसके पास मार को बचाने का कोई और उपाय नहीं था।

अन्त में बोधिमति बोधिसत्त्व को नमस्कार कर, कामदेव के सैनिकों के साथ काम-कन्याओं से घिरी हुई, रोषहीन कामदेव को हाथ से पकड़ कर मैडम रति लजाती हुई चली गईं, बोधिद्रुम के नीचे मार को जीतने वाले बोधिसत्त्व अकेले रह गये और विना विघ्नबाधा के भावना करते हुये बोधि-प्राप्ति के कार्य में तल्लीन हो गये।

इस प्रकार रात के पहले पहर मे बोधिसत्त्व को पूर्वजन्म परम्परा का ज्ञान हुआ, जिससे उन्होंने निश्चय किया कि मनुष्य-सहित यह जगत संसरणशील है और अनित्य है। रात के मझले पहर में दिव्यदृष्टि के द्वारा उन्होंने प्राणियों को जन्म लेते, बूढ़े होते, विपत्ति सहते और मरते हुये देख कर निश्चित रूप से जान लिया कि सब कुछ दुक्खमय है।

ज्ञान की अगली कड़ी में उन्होंने जान लिया कि दुक्ख जन्म का फल है। जन्म भव के कारण होता है। भव उपादान से होता है। उपादान विषयों की तृष्णा के होने से होता है। तृष्णा वेदना से होती है। वेदना

स्पर्श के कारण होती है। स्पर्श षडायतन से होता है। षडायतन नामरूप से उत्पन्न होता है। नामरूप विज्ञान से होता है। विज्ञान बार–बार संस्कार से होता है। संस्कार का हेतु अविद्या है।

इस प्रकार जन्म लेने वालों की दुक्खपरंपरा की आवृत्ति बार–बार होती रहती है। अविद्या के निरोध से इस दुक्ख–परंपरा को पूर्णरूप से उलटाया जा सकता है। परमार्थतः (परमार्थ में) यहाँ आत्मा नहीं है। सबकी सब अनुभूति तथा कृति एक के सहारे नहीं होती। यहाँ जिसे आत्मा कहा जाता है या जगत् कहा जाता है, वह सब स्कन्धों का केवल परिवर्तन (की धारा) है।

अन्त में उन्होंने जाना कि दुक्खपरम्परा के नाश का मार्ग वही है, जिसका मैंने अकेले अभ्यास किया है; जिसमें न भोग है, न क्लेश है। वह योग के लिये उचित गुणवान मार्ग है और जो आत्मा और अनात्मा से रहित तथता है, उसे मैंने अभी साक्षात् कर लिया है। रात बीत चुकी है। प्रभाकर (सूर्य) का उदय हो गया है। अब मैं बुद्ध हूँ।

दुक्ख, दुक्खसमुदय, दुक्खनिरोध और (दुक्खनिरोध) मार्ग में जिसकी दृष्टि सम्यक् ज्ञान वाली होती है, उसके ऊपर निरंतर सुखवृष्टि होती रहती है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दु:खों की जो परंपरा थी, वह आज पूरी पूरी रुक गई। आदि आदि।

इस प्रकार बुद्धत्व प्राप्ति के बाद भगवान् बुद्ध ने त्रपुष और भल्लिक नाम के दो व्यापारियों से मधु–पिंड ग्रहण किया, ब्रह्मा (सहंपति, सहापति) की प्रार्थना पर धर्मामृत के प्रवचन का फैसला किया, उपक नामक आजीवक को मोहित किया और धर्मामृत वितरित करने के लिये चारिका पर चल पड़े।

नवें प्रसंग का विषय संघ–प्रतिष्ठापन है। इस प्रकार चारिका करते हुये वाराणसी के समीप इसिपत्तन मिगदाय (ऋषिपत्तन मृगदाव) में भगवान बुद्ध ने धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हुये कौंडिन्य आदि पंच–वर्गीय यतियों को चार आर्य–सत्यों में पूरी तरह स्थिर किया। अब

वे भगवान बुद्ध के पंचवर्गीय भिक्षु[1] के नाम से विख्यात हुये। इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने काशी में इन पंचवर्गीय भिक्षुओं के साथ संघ की प्रतिष्ठा की, जो लोगों के बीच ऐक्यभाव की ओर उन्मुख होकर उनका हित चिन्तन करता हुआ बढ़ने लगा।

धर्म जाति (जन्म) का विवेचन नहीं करता वह गुणमात्र देखता है। धर्म से लोगों को आर्यता[2] या आर्यभाव का लाभ होता है। धर्म लोगों में भेद-भाव दूर कर एक वंश में सम्मिलित करता है। धर्म में न कोई ब्राह्मण और न कोई शूद्र; न कोई हीन, न कोई मध्यम और न कोई उत्तम; इसमें गोरे-काले-पीले-रंग वाले, विविध भाषाओं और उपभाषाओं के बोलने वाले, विभिन्न आकृतियों[3] वाले सभी सम्मिलित हैं और बराबर का स्थान पाते है और रखते हैं। वे दयालु, एक दूसरे के उपकार में लगे हुये, थोड़ा सा भोग करने पर भी, मुक्ति-परायण और सब प्रकार से बोधि के सहारे वाले बन गये हैं।

इस प्रकार संघ के विषय में भगवान् बुद्ध की परिकल्पना को महाकवि ने कितनी वखूबी उतारा है, इसका अन्दाज़ अधोलिखित दो गाथाओं (श्लोकों) से हो सकता है–

संघो धर्मपरायणो जिनसुतोऽनागारिको निःस्पृहो
भिक्षावृत्तिरिह त्रिचीवरबहिस्त्यागोन्मुखः पंडितः।
विद्यादानविचक्षणः करुणया सामग्र्यशिक्षामुखाद्
एकां मानवमात्रतां विहितवान् विश्वैकनीडां शुभाम्।।

---

1. इन पंचवर्गीय मिक्षुओं के नाम हैं– कोंडञ्ञो (कौण्डिन्यः), वप्पो (वाष्पः), महानाम, अस्सजि (अश्वजित्) और भद्दिज (भद्रजित्।)।
2. बौद्धसाधना की चार सीढ़ियों– सोतापत्ति (श्रोत आपत्ति), सकदागामी (सकृदागामी), अनागामी, अरहत्त (अर्हत्त्व)– में से यहाँ तक कि निचली सीढ़ी यानी सोतापत्ति तक पहुँचने वाला साधक आर्य कहा जाता है।
3. यही भाव कवि ने बुद्धविजयकाव्य के पहले सर्ग में व्यक्त किया है–
   नाममि तं शाक्यविभुं कृपानिधिं
   परा प्रसिद्धिर्भुवि यस्य वर्तते।
   जनो विभिन्नाकृतिजातिभेदवान्
   यमाश्रितो भेदधियं व्यपोहति।। (बुद्ध वि. का. प्रथम सर्ग, गाथा 51)

[भगवान् का धर्मपरायण, विद्यादान मे चतुर, पंडित, पुत्रभूत संघ ने घर बार छोड़ कर बीत राग होकर, भिक्षावृत्ति से निर्वाह तथा तीन चीवरों को छोड़ अपने पास की अन्य वस्तुओं का त्याग करने के लिये उद्यत होकर, करुणा से एकता की शिक्षा के द्वारा एक अद्वितीय पवित्र मानवमात्रता का निर्माण किया, जिसमें संपूर्ण विश्व शरण ग्रहण कर सके।]

मूढानां परिकल्पितं च मलिनं यज्जातिवादादिकं
तत्संपूर्णमपोढवाञ्जगति योऽभ्यागारिकाणां गणः।
सग्धौ पंक्त्यविभेदधीः स्वकरणं मुक्तश्च जातिग्रहाद्
बद्धान् बन्धुतयाखिलान् विहितवान् एकान्वयान् भूजनान्॥

[अभ्यागारिकों (गृहस्थों) का जो गण बना वह मूढों के द्वारा परिकल्पित जाति आदि की जो गन्दी प्रथा थी, उससे पूर्ण रूप से रहित हो गया, सहभोज में उसने पंक्तिभेद की भावना न रहने दी, कन्या लेने देने में उसने जाति बन्धन को तोड़ डाला, उसने पृथ्वी के सब लोगों को एक भाईचारे के बन्धन में बाँध कर एक वंश (खानदान) का बना दिया।]

दसवें प्रसंग का शीर्षक और विषय है—बुद्धकायलक्षण। इस सन्दर्भ में महायान बौद्ध धर्म का त्रिकाय सिद्धान्त प्रायः वर्णित है। भगवान् बुद्ध के चरित का दैवीकरण स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस सिलसिले में इस प्रसंग के दूसरे और तीसरे श्लोक (गाथायें) द्रष्टव्य हैं—

प्रत्यक्षः शरदामशीतिमभवन्निर्माणकायेन यो
धर्मं लोकहिताय पंचरहितान् पंचाशदब्दान् जगौ॥
पश्चाद् धातुषु कारितैरगणितैः स्तूपैः स्मृतः पूजितो
बिंबैश्चित्रपटैश्च बुद्धभगवान् क्षेमाय नः कल्पताम्॥

[अपने निर्माणकाय के द्वारा जो अस्सी वर्ष (यहाँ) प्रत्यक्ष रहे थे, लोकहित के लिये जिन्होंने पांच कम पचास वर्ष तक धर्मदेशना की थी, बाद में (शरीर की) धातुओं पर बनाये गये अगणित स्तूपों के द्वारा प्रतिमाओं के द्वारा, चित्रपटों के द्वारा जिनका स्मरण और पूजन किया जाता है, वे बुद्ध भगवान् हमारे कुशल-क्षेम के लिये हों।]

द्वात्रिंशद्वरलक्षणाऽष्टदशकैः श्रीमाननुव्यंजनैः
संभोगात्ममयोऽनुभूतिविषयो बुद्धः शिशूनामपि।

गातुं यस्य मनोज्ञतां न कवयः सर्वे मिलित्वा क्षमा
गायन्त्यंशलवेन किं तु कृतिनोऽस्माकं सुखायास्तु सः॥

[बत्तीस उत्तम लक्षणों से युक्त, अस्सी अनुव्यंजनों से शोभा पाने वाले संभोगकाय वाले जिन बुद्ध भगवान् का बच्चे भी अनुभव कर पाते हैं, तथा जिनकी मनोहरता का वर्णन सब कवि मिलकर भी नही कर पाते, पर पुण्यवान् लोग उसका लवलेश भर गाते रहते हैं, वे भगवान् हमारे सुख के लिये हों।]

कवि ने बत्तीस महापुरुष लक्षणों और अस्सी अनुव्यंजनों वाले भगवान् बुद्ध के रूप को बार-बार प्रकाशित किया है। वह उनके विविध अवदानों को भगवत्संदर्शित बताता है। श्लोक इस प्रकार है–

आदौ शाक्यजनेषु भव्यजननं भोगैस्ततो वर्धनं
नैपुण्याच्च यशोधराधिगमनं दृष्ट्वा निमित्तान्यतः।
गेहान्निष्क्रमणं विजित्य मदनं लब्ध्वा च बोधिं वरां
धर्मस्थापननिर्वृतं च भगवत्संदर्शितं पातु नः॥

[पहली बात तो यह कि शाक्यजनों के बीच उत्तम जन्म-ग्रहण करना, फिर भोग विलास के बीच बड़ा होना, शिल्पों में निपुण होने के कारण गोपा (यशोधरा) की प्राप्ति करना, फिर (चार) निमित्तों को देखकर घर से निकल पड़ना, मार पर विजय प्राप्त करके उत्तम बोधि प्राप्त कर धर्म-प्रतिष्ठापन करना तथा निर्वृत होना, ये सब भगवान् के संदर्शित (दिखावन, दिखावट, प्रदर्शन) हमारी रक्षा करें।]

काव्य के सत्तानवं श्लोक में कवि ने इस कृति को अपनी धर्मपत्नी सुजाता को उपहत किया है और लगे हाथ पत्नी को बोधि से भूषित कह कर अपनी इकलौती बेटी बोधिश्री को भी याद किया है। यहाँ श्लेषालंकार स्पष्ट है। श्लोक इस प्रकार है–

यस्याः प्रार्थनया मया विरचितं काव्यं सगेयैर्पदैर्
यास्मै संस्पृहयत्यनेन परमं लब्धे क्षणे मोदते।
याभ्यागारिकजीवने मम सखी बोधिश्रियालंकृता
सा मे काव्यमिदं गृणात्युपहृतं प्रीत्या सुजाता सुखम्॥

[गेयपदों से युक्त यह काव्य जिनकी प्रार्थना पर रचा गया है, जिनकी इसमें अत्यन्त स्पृहा है, जो इसके द्वारा अवसर पाने पर आनन्दित होती हैं, जो बोधिश्री (बोधि की शोभा, बोधि का वैभव आदि) से विभूषित मेरे अभ्यागारिक जीवन की सहाचारिणी हैं, वे सुजाता इस उपहारभूत काव्य का सुख (प्रीति) से गान करें।]

अन्त में कवि काव्य के अधोलिखित सैवें श्लोक से दसवें प्रसंग और ग्रन्थ का समापन करते हुये दावा करता है कि सज्जन लोग स्नेह से इस नवीन बुद्धोदय काव्य का गान करते हैं–

रम्यं रम्यगुणानुवादचरितैः श्रीशाक्यसिंहप्रभो
रम्यं भक्तिरसायनेन मधुरेणौजायमान नवम्।।
रम्येष्वप्यधिराजितेषु सुकविप्रत्नप्रबन्धेष्विदं
रम्यं रम्यमहो गृणन्ति सुजनाः स्नेहेन बुद्धोदयम्।।

[अहो! रम्य, रम्य। सुकवियों के पुराने रमणीय प्रबन्धों के अस्तित्व में होते हुये भी सज्जन लोग श्री शाक्यसिंह भगवान् के रम्यगुण बखान करने वाले चरित्रों से रमणीय मधुर भक्तिरसायन ओजस्वी और सुन्दर इस नवीन बुद्धोदय काव्य का स्नेह से गान कर रहे हैं।]

काव्य की विशेषताएँ

यों तो इस प्रस्तावना के प्रारंभ में ही इस काव्य के काव्य–गुणों का उल्लेख कर दिया गया है, फिर भी इसकी अन्य विशेषताओं के बारे में चर्चा करना अभी शेष है। महाकवि शान्तिभिक्षु शास्त्री ने अपने इस काव्य के कथानक को बौद्ध वाङ्मय से चुन कर राजकुमार सिद्धार्थ के जीवन के नौ प्रसंगों को अपने काव्य का आधार बनाया है। ये सभी प्रसंग सदियों से चर्चा के विषय रहे हैं। हमारे प्रस्तुत महाकवि की विशेषता इस बात में है कि इन्होंने उन्हें इस प्रकार नये और नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है कि वे नये प्रतीत होते हैं। ललितविस्तर, जातकनिदान आदि ग्रंथों में देवगण खुल कर अपनी भूमिका अदा करते हुये दिखाये गये है, किन्तु यहाँ वे सिर्फ नेपथ्य में अपना असर दिखाते हैं। जो भी हो, कवि उनका उल्लेख भी नहीं करता।

कवि ने बोधिसत्त्व-जननी देवी माया के उस प्रसिद्ध सपने को छोड़ दिया है, जिसमें वे (माया देवी) इन्द्र के श्वेत ऐरावत हाथी को आकाश मार्ग से आते हुए और आकर उनके कोख की दाईं ओर से घुसते हुये देखती हैं। माया देवी सुबह स्वप्न की बात राजा शुद्धोदन (अपने पति) से बताती है और राजा राजपरिवार के दस्तूर के मुताबिक दैवज्ञों और ज्योतिषियों से राय-मशविरा करते हैं।

महाकवि ने बोधिसत्त्व के पैदा होते ही सात डग चलने की बात को भी छोड़ दिया है। मायादेवी बोधिसत्त्व के पैदा होने के सातवें दिन गुजर जाती है; जातकनिदान आदि में अंकित यह घटना भी यहाँ छोड़ दी गई है।

इस काव्य के तीसरे प्रसंग में गोपापरिग्रह वर्णित है। यहाँ पर कवि ने बोधिसत्त्व सिद्धार्थ की पत्नी और राहुल की माता का नाम गोपा लिखा है। कहीं कहीं गोपा के विशेषण-वाचक पद यशोधरा को भी नाम के (संज्ञापद) के रूप में प्रयुक्त किया गया है। यों तो यह बात सर्वविदित है कि यशोधरा नाम बहुत बाद में पड़ा, संभवतः कवियों ने दिया; क्योंकि तिपिटक में यह नाम संज्ञापद के रूप में नहीं मिलता। तिपिटक में जो नाम प्रायः मिलते हैं, वे हैं गोपा, भद्दकच्चाना, कच्चाना और राहुलमाता। कवि ने गोपा नाम को ही अपने काव्य के लिये क्यों चुना, यह बात स्पष्ट नहीं है।

चार निमित्तों के विषय में कवि ने पुरानी परंपरा के प्रति सहमति भी दिखाई है और आंशिक रूप में असहमति भी। भगवान् बुद्ध पृथ्वी पर जन्म ले धर्म की वर्षा कर दुःखी लोगों को दुःखों से पार ले जाने का रास्ता बतायें, सिखायें आदि बातों में देवगण बड़ी रुचि दिखाते हैं। यहाँ तक कि बोधिसत्त्व के अभिनिष्क्रमण में भी सहायक बनते हैं। पर इस काव्य में उन सब बातों को छोड़ दिया गया है। यहाँ पर शास्त्र के परम मर्मज्ञ कवि शास्त्री जी निमित्तों की बात को आगमेतर जानते हुए भी उसको अपने काव्य में गुंफित करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि अश्वघोष आदि की तरह महाकवि शान्तिभिक्षु शास्त्री ने भी उस कथानक को कवित्व के लिये अत्यन्त उपयुक्त समझा, अतः अपने काव्य में स्थान दिया।

निमित्तदर्शन के सन्दर्भ में कवि ने एक और नई उद्भावना की है। किसी अनजान यति के दर्शन के बाद और उससे अत्यधिक प्रभावित होने पर कुमार सिद्धार्थ रास्ते में गीत गाती हुई कृशा गौतमी को देख जाते हैं। वह कुमार के रूप से प्रभावित होती है और उसमें कुमार के प्रति प्रसाद-भाव उत्पन्न होता है। वह गाती है "निब्बुता नून सा माता"; यह कथा जातक अट्ठकथा में आई है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि यह कृशा गौतमी प्रसिद्ध भिक्षुणी कृशा गौतमी से भिन्न है, जिसको तथागत ने सरसों (सर्षप) के एक दाने के प्रयोग से स्वस्थ किया था।

बोधिसत्त्व सिद्धार्थ का अभिनिक्रमण बड़ा ही विवादित विषय है। सिद्धार्थ ने भरी जवानी में पत्नी व बेटे को छोड़ा, राजपाट जो प्रायः हासिल था, उसे ठुकरा दिया, आदि बातों का मूल कारण क्या रहा होगा; इस पर विद्वानों ने गंभीर मननचिन्तन किया है। धर्मानन्द कोसंबी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भीमराव आम्बेडकर आदि विद्वान और चिन्तक निमित्तदर्शन की घटनाओं को सिरे से खारिज कर देते हैं, किन्तु उन्हीं सब की परंपरा के विद्वान् और कवि शास्त्री जी उसे अपने कवित्व के लिये चुनते हैं, इससे आश्चर्य होता है।

मार पर विजय पाने की कथा को कवि ने यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया है। किन्तु संक्षिप्त होने पर भी उसमें वही काव्यगुण आ गये हैं, जो बुद्ध विजय के छत्तीसवें और सैतीसवें सर्गों में मिलते हैं। छत्तीसवें सर्ग का अन्तिम श्लोक मारपराजय का बड़ा ग्राफिक, सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है–

उदीर्य चैवं रतिरागतस्मृतिं स्मरं गृहीत्वा सबला विनिर्ययौ।
मुनेर्जयं वीक्ष्य जगाम भानुमान् रुरोह चन्द्रो विजयाभिनन्दनः॥

[ऐसा कह कर होश में आये हुये काम को पकड़कर रति सेना के साथ चली गई। सूर्य मुनि के विजय को देख कर (जिस बात को देखने के लिये वे अब तक आकाश में स्थित थे और बाद में आश्वस्त होकर) चले गये और विजय का अभिनन्दन करने वाले चन्द्रमा (आकाश में) चढ़ आये।]

महाकवि ने संघप्रतिष्ठापन की घटना को बहुत ही सीमित करके रखा है। संघ की स्थापना वस्तुतः यश और उसके चौवन साथियों

के बुद्ध–शिष्यत्व स्वीकार करने पर होती है, जब बुद्ध को जोड़ कर एकसठ सदस्य हुये थे। कवि ने छः सदस्यता वाले भिक्षुओं के समूह को ही संघ की संज्ञा दे दी है।

बौद्ध धर्म में त्रिकाय का सिद्धान्त कालान्तर में उद्भूत हुआ। यह महायान बौद्ध धर्म की विशेषता के रूप में जाना जाता है। हमारे प्रस्तुत महाकवि भगवान् बुद्ध को निर्माणकाय, संभोगकाय और धर्मकाय के रूप में देखते हैं। यह महायानी दृष्टि है। थेरवादी देश श्रीलंका में लिखा गया यह काव्य महायान का दृष्टिकोण प्रस्तुत करे, आश्चर्य होता है। पर यह तो कवि की अपनी स्वतंत्रता है। महायानी क्षेत्र किन्नौर (हिमाचल प्रदेश, भारत) में इसका प्रथम प्रकाशन (1988 विद्याभारती पत्रिका में) संभवतः पूर्वनियोजित था।

इसके अलावा इस काव्य की कुछ और भी विशेषतायें हैं, जिन्हें विस्तार भय से छोड़ा जा रहा है।

यह गीतिकाव्य संस्कृत भाषा में रचा गया है। संस्कृत में होने के बावजूद भी इस काव्य में कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जो संस्कृतेतर बौद्ध मूल के हैं। वे प्रायः पारिभाषिक पद के रूप में हैं। महाकवि शान्तिभिक्षु शास्त्री ने अपने संस्कृत–लेखन में बौद्ध परंपरा का पूर्णतः पालन किया है। संस्कृत को सरल, सुपठ, सुगम और सुबोध बनाने का आन्दोलन सदियों पहले सबसे पहले बौद्धों ने चलाया था। कविरत्न शास्त्री जी उसे अपने जीवन के अन्तिम क्षणों आगे बढ़ाया। उन्होंने अपने प्रायः सारे ग्रन्थों में लिपिकर परंपरा का निर्वाह किया है। फलतः कवि ने शब्दों के मध्य में नकार (न् ध्वनि) को छोड़ कर अन्य सभी नासिक्य ध्वनियों के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया है (जैसे गङ्गा के स्थान पर गंगा, चञ्चु के स्थान पर चंचु, दण्ड के स्थान पर दंड आदि)। इस संबन्ध में इतना जोड़ देना अनावश्यक नहीं होगा कि एक तो आधुनिक छपाई (मुदण) में उसका प्रयोग बड़ा सुविधाजनक होता है और दूसरे उसके पीछे प्राचीन विद्वत् परंपरा का आधार भी है। महाकवि ने बौद्धों की युगों पुरानी संकर संस्कृत की परंपरा का निर्वाह भी किया है और पाणिनीय संस्कृत की व्याकरण–परंपरा का भी आदर भी किया है। इस विषय में कवि का एक मात्र उद्देश्य यही था कि भाषा को ज्यादा से ज्यादा सरल और सुगम बनाया जाये।

इस काव्य के विनम्र संपादक के निवेदन पर राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के सम्माननीय कुलपति महोदय, प्रो॰ राधावल्लभ त्रिपाठी ने लोकप्रिय ग्रन्थमाला प्रकाशन योजना के तहत सम्मिलित करके न सिर्फ मुझ पर उपकार किया है, बल्कि पूरे बौद्ध जगत को उपकृत किया है। हम उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। इस काव्य के कीर्ति-शेष रचयिता महाकवि शान्तिभिक्षु शास्त्री के शब्दों में यह काव्य बौद्धों के बीच गीतिकाव्य के अभाव को समाप्त कर देगा। अतः इस कार्य में सहायक अन्य सभी मित्रों और बन्धुओं के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिनके प्रत्यक्ष और परोक्ष सहयोग ने इस उत्तम काव्य को पाठकों के समक्ष लाने में सफलता दिलाई है। उन महानुभावों में श्री परमानन्द वत्स, सहायक रजिस्ट्रार, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, डॉ॰ चन्द्रभूषण झा, उपाचार्य, सेंट स्टीफेन कालेज, दिल्ली, श्रीमती डॉ॰ बोधिश्री शास्त्री, सुपरवाइजर, सिंहल यूनिट, आकाशवाणी, नई दिल्ली, श्री शान्ति स्वरूप बौद्ध (सम्यक प्रकाशन), नई दिल्ली, श्री प्रफुल्ल गडपाल (पुस्तकालय, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान) श्री हीरालाल, अमर प्रिंटिंग प्रेस, (मुद्रण कार्य) के नाम प्रमुख हैं। डॉ॰ झा का नाम पुनः उल्लिखित करता हूँ, क्योंकि उन्होंने संपादन कार्य में आई कई गुत्थियों के सुलझाने में मेरी सहायता की। मैं यशस्वी कवि की पुत्री और उनकी एकमात्र वारिश श्रीमती डॉ॰ बोधिश्री शास्त्री का नाम भी दुबारा उल्लिखित करता हूँ, क्योंकि उनकी अनुमति के बिना यह ग्रन्थरत्न प्रकाश में आ ही नहीं पाता। मैं अपने परिवार के सदस्यों डॉ॰ प्रियसेन (पुत्र), डॉ॰ अल्पा सिंह (पुत्रवधू), डॉ॰ निशा सिंह (पुत्री), श्री रवीन्द्र कुमार (दामाद), परितोष और वादिश (दोनों पौत्र) को भी स्मरण करता हूँ, जो मेरी व्यस्तता के क्षणों में और भी तत्परता से मेरी सेवा और देखभाल करते हैं, सामान्य क्षणों में तो करते ही हैं।

गुरुवर्यस्य सुगत-कविरत्न प्रोफेसर डॉ. शान्तिभिक्षु शास्त्रिणः सादरं परिंदितं। त्वदीयं वस्तु प्राचार्य तुभ्यमेव समर्पये।।

199 वैशाली इन्क्लेव **संघसेन**
पीतमपुरा, दिल्ली-110088
17.09.2009

बुद्धोदयकाव्यम्

विषयानुक्रमणिका

सुगतकविरत्न-
शान्तिभिक्षुशास्त्रिकृतं

बुद्धोदयकाव्यम्

प्रथमः प्रसंगः
जन्ममंगलम्

स्नेहार्द्रस्तनुते सुखानि सततं यो दुःखिनां जीवने,
मैत्र्या निर्भयतां दधाति विपुलां यो जीवतां मानसे।
विश्वस्ता जनतेह मातरि यथा यस्मिन् सुलब्धोत्सवा,
कारुण्यामृतसारवान् विजयतां सत्त्वः स कोप्युत्तमः।।1।।

स्नेह से पसीजा हुआ जो निरन्तर दुःखियों के जीवन में सुखसंचार करता है, जो अपनी मैत्री से प्राणियों के हृदय में परम निर्भीकता का भाव भर देता है, जिसमें माता के समान जनता विश्वास करती हुई उत्सव मनाने लगती है, उस करुणा रूपी अमृत के सारभूत किसी उत्तम सत्त्व की यहां विजय हो।।1।।

यो लोकाय वरो वरं वितरति प्रीत्युत्तमेनात्मना
शल्यान्युद्धरतीह जीवनपथाद् यो जीवतां भूतये।
लोकः शापशरौ न जातु लभते यस्मादुदाराशयात्
सर्वाशापरिपूरणाय जगतस्तं बोधिसत्त्वं भजे।।2।।

जो श्रेष्ठ-सत्त्व अपने प्रेम से पूर्ण उत्तम मन से लोक को वर-प्रदान करता है, जो प्राणियों के अभ्युदय के लिए उनके जीवन मार्ग के कांटों को दूर कर देता है, जो उदार हृदय दुनिया में किसी को न कोसता है, न किसी पर हथियार उठाता है, जगत् की सब आशाओं को परिपूर्ण करने वाले, उस बोधिसत्त्व का मैं भजन करता हूं।।2।।

यो दीपंकरमाश्रितो विहितवान् बोधावुदारां मतिं
सेत्स्यस्यात्ममनोरथेष्विति वरं यः प्राप्तवाञ्छ्रीघनात्।
एवं यः प्रणिधानवान् करुणया संप्रस्थितो व्याकृतो
जातः शाक्यकुले सदा स भगवान् क्षेमाय नः कल्पताम्।।3।।[1]

जिसने तथागत-दीपंकर की शरण जाकर बोधि के लिए उत्तम संकल्प किया, जिसने उन तथागत से तुम अपने मनोरथों में सिद्धि प्राप्त करोगे ऐसा वरदान पाया, इस प्रकार जो स्थिर संकल्प वाला करुणा से बोधिचर्या में लग गया, तथा जिसके विषय में अनेक तथागतों ने बुद्ध होने की भविष्यवाणी की, वे शाक्यकुल में जन्म लेने वाले भगवान हम सबका कुशल-क्षेम करें।।3।।

या शश्वद् ध्रियते च या च मनसा संवेद्यतेऽनास्रवा
नित्या धर्ममयी च याऽपरिमिता कारुण्यकोषान्विता।
यस्या एव बलेन तिष्ठति जनो हिंसां विना शक्तिमान्
तां शान्त्यै जगतां भजे भगवतः शान्त्यैकसारां तनुम्।।4।।

जो नित्य विराजमान है, जिस निर्मलता का हृदय में अनुभव होता है, जो धर्ममयी है, नित्य है, अपरिमित है, करुणा के कोष से युक्त है, जिसके बल से ही व्यक्ति हिंसा के बिना बलवान् बना रहता है, उस भगवान् की काया को, जिसका सार एकमात्र शान्ति है मैं लोक-शान्ति के निमित्त भजन करता हूं।।4।।

निर्माणेन रतेः प्रियस्य वपुषः कान्तिं क्षिपन्तीं श्रिया
ज्योत्स्नां चन्द्रमसः स्वसौम्यविभया वीतश्रियं कुर्वतीम्।
सिंचन्तीं स्वसुभाषितेन मधुना तिक्तं जनानां मनः
रूपेणाप्रतिमां भजे भगवतः कान्त्यैकसारां तनुम्।।5।।

अपने निर्माण-काय की शोभा के द्वारा रतिनाथ के शारीरिक सौन्दर्य को लज्जित कर देने वाली, अपनी सौम्य कान्ति से चन्द्रमा की चाँदनी को

---

1. इस ग्रंथ के संपादक को जो पांडुलिपि मिली उसमें तीसरे श्लोक का चौथा पाद लुप्त था। ऐसी स्थिति में उन्होंने चौथे पाद की पूर्ति यों की "जातः शाक्यकुले स राजतनयः क्षेमंकरः सर्वदा।।" बाद में दूसरी पांडुलिपि से मिलान करने पर महाकवि का श्लोक पूरा हो सका। यहां सुधी पाठक तै करें कि विनम्र संपादक का प्रयास कहां तक महाकवि के अनुरूप है।

श्रीहीन बना देने वाली, अपने सुभाषित रूपी अमृत से लोगों के तीखे मन को सरस कर देने वाली, रूप में अनुपम, कान्ति ही जिसका एकमात्र सार है ऐसी भगवान की (भौतिक) काया का मैं भजन करता हूं।।5।।

शान्तं वैरमहो वृकी मृगसुतान् स्तन्येन पुष्णात्यहो
तिग्मैः संतनुते करैरपि लिहंस्तापं न सुर्योऽप्यहो।
भिन्नो लोकगणो विवादकलहैर्हन्तैक्यमद्याश्नुते
क्षुब्धं सर्वमिदं प्रशाम्यति जगद् भोः पश्य बुद्धोदयम्।।6।।

अहो! वैर-भाव शांत हो गया। अहो! वृकी मृग के छौनों को अपनी छाती के दूध से पोस रही है। अहो! सूर्य भी अपनी तीखी किरणों से छूता हुआ भी नहीं झुलसा रहा है। ओहो! लड़ाई-झगड़ों से फूट में पड़े लोग आज मेल-मिलाप कर रहे हैं। अहा देखो! बुद्ध के उदय को देखो। यह सब अशान्त जगत् आज शान्ति को प्राप्त कर रहा है।।6।।

श्रुत्वेदं सुमनोहरं प्रियकरं श्रीब्रह्मणो भाषितं
देवा मानवरूपिणो भुवमिताः श्रीलुम्बिनीं सर्वतः।
कुर्वन्तो जनतां शुभारुणतरैः पिष्टातकैः श्रीमतीं
नृत्यन्तो रसभावरीतिमधुरां गीतश्रियं तन्वते।।7।।

श्री ब्रह्म-देव के इस अत्यन्त मनोहारी, प्रीति उपजाने वाले वचन को सुनकर, देवगण मानव-रूप में धरती पर सब ओर से श्री लुम्बिनी में आकर, लोगों को उत्तम एवं अत्यन्त लाल-लाल गुलाल से शोभायमान करते हए, नाचते हुए, रस-भाव एवं रीति से मधुर गीतों की श्री प्रसारित करने लगे।।7।।

वन्दे लोकपते

लोकमनाथमिमं विवदन्तं
कलहरतं कुशलं न चरन्तम्।
अनुकम्पयितुं भुवमवतीर्ण
वन्दे लोकपते ।।अ।।

आपस में विवाद करते हुए कलह में अनुरक्त, शुभाचरण न करने वाले इस अनाथ लोक पर अनुग्रह करने के लिए धरती पर आने वाले हे लोकपति, मैं आपकी वंदना करता हूं।।अ।।

जनो जनस्य विरुद्धं तनुते
स्वपरभेदमयलोकं मनुते।
संधातुं लोकानवतीर्ण
वन्दे लोकपते ।।आ।।

एक आदमी दूसरे आदमी का विरोध करता है, अपने-पराए के भेद से भरी हुई इस दुनिया को समझता है। लोगों को मिलाने के लिए आने वाले हे लोकपति, मैं आपकी वंदना करता हूं।।आ।।

हिंसन्तं जीवान् धर्मार्थं
हिंसन्तं लोकान् राज्यार्थम्।
शिक्षयितुं करुणामवतीर्ण
वन्दे लोकपते ।।इ।।

धर्म के लिए प्राणिहिंसा करने वाले, राज्य के लिए जनहिंसा करने वाले इस लोक में करुणा की शिक्षा देने के लिए आने वाले हे लोकपति, मैं आपकी वन्दना करता हूं।।इ।।

यः पातयति न दंडं शस्त्रं
यो रक्षति धर्मेण निरस्त्रम्
नाथः स इति गदितुमवतीर्ण
वन्दे लोकपते ।।ई।।

जो न दण्ड देता है, न शस्त्र चलाता है, जो बिना अस्त्र के ही धर्म द्वारा रक्षा करता है, वह (जगत् का) मालिक है ऐसा उपदेश देने के लिए लोक में आने वाले हे लोकपति, मैं आपकी वंदना करता हूं।।ई।।

तृष्णादासमनुष्यमपूर्णं
भाति सदा भुरुवसुभिः पूर्णम्।
शमे सुखं शासितुमवतीर्ण
वन्दे लोकपते ।।उ।।

जो आदमी तृष्णा का दास है, उसे धन से भरी धरती खाली जान पड़ती है। (तृष्णा की) शान्ति में ही सुख है यह बात सिखाने के लिए (लोक में) आने वाले हे लोकपति, मैं आपकी वंदना करता हूं।।उ।।

परस्वमिह तृष्णया हरन्तं
परदारेष्वनुचितं चरन्तम्।
शीलं देशयितुं ह्यवतीर्ण
वन्दे लोकपते ।।ऊ।।

तृष्णावश दूसरे का धन हरने वाले, परदार से अपना चाल-चलन बिगाड़ने वाले, इस लोक को शील की देशना करने के लिए आने वाले हे लोकपति, मैं आपकी वंदना करता हूं।।ऊ।।

यश्च स्वदुःखोद्धारे यत्नः[1]
परदुःखोद्धारेऽपि स यत्नः।
कार्य इति प्रवदितुमवतीर्ण
वन्दे लोकपते ।।ऋ।।

अपना दुख दूर करने के लिए जो यत्न कर रहे हो, वह यत्न दूसरे के दुख दूर करने के लिए भी करना चाहिए ऐसी बात बतलाने के लिए आने वाले हे लोकपति, मैं आपकी वंदना करता हूं।।ऋ।।

चर्या कृपामतिं जनमित्रं
लवेन कुरुते सर्वपवित्रम्।
इति देशयितुं जगदवतीर्ण
वन्दे लोकपते ।।ॠ।।

जो लोगों का मित्र है, जिसमें करुणाचित्त उपजा है, उसे पलक मारते-मारते बोधि के लिए की गई चर्या सबको पवित्र बना देती है इस प्रकार की देशना देने के लिए आने वाले हे लोकपति, मैं आपकी वंदना करता हूं।।ॠ।।

मधुरिह वरिवस्यति

अरुणरागमयललितवसनसमलंकृतविस्फरिताशैः।
तरुणतरानलहसितसदृशसुमनोहरविकचपलाशैः।।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।अ।।

---

1. यहां एक मात्रा अधिक है।

जिनके लाल-रंग रूपी सुन्दर वस्त्र से दिशाएं व्याप्त एवं विभूषित हैं, जो देखने में अग्नि की जवानी से भरी हुई हंसी जैसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते हैं, ऐसे खिले हुए ढाक के फूलों से वसन्त लोकनाथ की यहां पूजा कर रहा है। हे शोकहर, नमस्कार से पूजा करने वाले मुझको भी अपनी करुणा से सनाथ करो।।अ।।

दिशि दिशि सुरभिगन्धसमुदीरणपटुतरविकसितसालैः।
नवमंजरीमनोज्ञ-विहंगमकूजनचारु-रसालैः ।।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।आ।।

दिशा-दिशा में सुगन्ध फैलाने में अत्यन्त चतुर फूले हुए सालवृक्षों द्वारा, नए बौर से मनोहर तथा पक्षियों के कूजन से रमणीय, आम के तरुओं द्वारा, वसन्त लोकनाथ की यहां पूजा कर रहा है। हे शोकहर, नमस्कार से पूजा करने वाले मुझकों भी अपनी करुणा से सनाथ करो।।आ।।

वकुलवीथिकाविहरणशीलसुखितयुवजनसंलापैः।
आम्रकुंजगतशिशुजनकेलिसमयकृतबहुलालापैः।।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।इ।।

वकुल-वीथियों से सैर करने के स्वभाव वाले, सुखी जवान लोगों के संलापों द्वारा, आम के कुञ्जों में जाकर खेलते समय बच्चों के द्वारा किए गए भूरि-भूरि वार्तालापों के द्वारा वसन्त लोकनाथ की यहां पूजा कर रहा है। हे शोकहर, नमस्कार से पूजा करने वाले मुझको भी अपनी करुणा से सनाथ करो।।इ।।

यवगोधूमसस्यलवनानतकृषकवधूमृदुगानैः।
दत्ततरुणजनसाधुवादपरिवर्धितगीतवितानैः।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।ई।।

जौ और गेहूं की फसल काटने में झुकी हुई किसानों की स्त्रियों के मधुर गानों के द्वारा, तथा नौजवानों के द्वारा शाबाशी दिए जाने पर बढ़-चढ़ कर गाए जाने वाले गीतों के द्वारा वसन्त लोकनाथ की यहां पूजा

कर रहा है। हे शोकहर, नमस्कार से पूजा करने वाले मुझको भी अपनी करुणा से सनाथ करो।।ई।।

वटतिन्तिणीविलंबितदोलान्दोलनलोकशरीरैः।
सरससमयकृतहृदयहरणवशपरमभीरुरसवीरैः।।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।उ।।

बरगद और इमली के पेड़ों से लटकते हुए झूलों पर पैंग लगाने से झूम-झूम कर हिलते शरीर वाले, सरस-समय द्वारा चित्त चोर (चुरा) लिए जाने के कारण अत्यन्त घबराए हुए, रसानंद के वीरों द्वारा वसन्त लोकनाथ की यहां पूजा कर रहा है। हे शोकहर, नमस्कार से पूजा करने वाले मुझको भी अपनी करुणा से सनाथ करो।।उ।।

रससंचयतल्लीनकुसुमगृहगर्भगतैः संक्षुब्धैः।
डयनविधूतपक्षकृतझंकृतिरवसुभगैर्मधुलुब्धैः।।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।ऊ।।

रस के संग्रह में तल्लीन, फूलों के तहखानों में घुसे हुए, अशान्त, उड़ने के कारण कंपित पंखों की झंकार ध्वनि से मनोहर मधुकरों के द्वारा, वसन्त लोकनाथ की यहां पूजा कर रहा है। हे शोकहर, नमस्कार से पूजा करने वाले मुझको भी अपनी करुणा से सनाथ करो।।ऊ।।

रुक्षचित्तमपनीय जनितसुललितसुललितरसभावैः।
सकललोकहृदयंगमकोकिलकुहूकुहूकलरावैः।।
मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।ऋ।।

रूखे मनोभाव को दूर कर, अत्यन्त ललित रस-भावों को उपजाने वाली, सब लोगों के मन को भाने वाली, कोयल की कुहू-कुहू ध्वनियों से वसन्त लोकनाथ की यहां पूजा कर रहा है। हे शोकहर, नमस्कार से पूजा करने वाले मुझको भी अपनी करुणा से सनाथ करो।।ऋ।।

स्पर्शसुखेन तनौ रोमांचनसंविधानकृतधीरैः।
ललितलुम्बिनीवनविकासने परमविदग्धसमीरैः।।

मधुरिह वरिवस्यति जननाथम्।
मामपि नतं कुरुष्व शोकहर निजकरुणया सनाथम्।।ॠ।।

अपने स्पर्श के सुख से शरीर पर रोमांच करने के प्रयत्न में निपुण, लुम्बिनी के रमणीय वन को प्रफुल्लित करने में परम चतुर, पवनों के द्वारा वसन्त लोकनाथ की यहां पूजा कर रहा है। हे, शोकहर, नमस्कार से पूजा करने वाले मुझको भी अपनी करुणा से सनाथ करो।।ॠ।।

जनसकल-मंगलम्

दिनमिव गगनमणेरुदयेन।
तव जन्मनेह पुण्यतमेन।।
सिद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।
ऋद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।।अ।।

जैसे सूर्य के उदय होने से दिन होता है, वैसे ही यहां पर तुम्हारे पवित्रतम जन्म से लोक का संपूर्ण मंगल सिद्ध हो, लोक का संपूर्ण मंगल समृद्ध हो।।अ।।

श्वसितमिवात्र जने पवनेन।
प्राणदायिना तवोदयेन।
सिद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।
ऋद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।।आ।।

जैसे इस लोक में वायु-द्वारा सांस ली जाती है, वैसे ही प्राण देने वाले तुम्हारे उदय से लोक का संपूर्ण मंगल सिद्ध हो, लोक का संपूर्ण मंगल समृद्ध हो।।आ।।

जीवितमिव लोकस्यान्नेन।
तव संजीवनकरणभवेन।।
सिद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।
ऋद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।।इ।।

जैसे अन्न से लोक का जीवन होता है, वैसे ही तुम्हारे संजीवन-दायी आविर्भाव से लोक का संपूर्ण मंगल सिद्ध हो, लोक का संपूर्ण मंगल समृद्ध हो।।इ।।

सुखमिव कालवर्षिदेवेन।
धर्मवर्षिणा त्वदवसरेण।।
सिद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।
ऋद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।।ई।।

जैसे समय पर बरसने वाले देव से सुख होता है, वैसे ही धर्म की वर्षा करने वाले तुम्हारे उपयुक्त अवसर से लोक का संपूर्ण मंगल सिद्ध हो, लोक का सम्पूर्ण मंगल समृद्ध हो।।ई।।

कुसुमहसितमिव मधुसमयेन।
हर्षकृता तव संजातेन।।
सिद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।
ऋद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।।उ।।

जैसे वसन्त-समय में फूल हंसने लगते हैं, वैसे ही आनन्ददायी तुम्हारे जन्म से लोक का संपूर्ण मंगल सिद्ध हो, लोक का संपूर्ण मंगल समृद्ध हो।।उ।।

आप्लावनमिव बृहदौघेन।
कारुण्येन तवोत्पादेन।।
सिद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।
ऋद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।।ऊ।।

जैसे बड़ी बाढ़ से सब ओर जल ही जल दीखता है, वैसे ही तुम्हारी करुणा की बाढ़ जैसे जन्म (उत्पाद) से लोक का संपूर्ण मंगल सिद्ध हो, लोक का संपूर्ण मंगल समृद्ध हो।।ऊ।।

तनुकल्पनमिव सिद्धरसेन।
तव दुःखापहसमुद्भवेन।।
सिद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।
ऋद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।।ऋ।।

जैसे सिद्ध-रस से कायाकल्प हो जाता है, वैसे ही तुम्हारे दुःख का हरण करने वाले तुम्हारे सुन्दर जन्म से लोक का संपूर्ण मंगल सिद्ध हो, लोक का संपूर्ण मंगल समृद्ध हो।।ऋ।।

सकलजनगमनमिव गगनेन।
तवोदितेन शरणभूतेन।।
सिद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।
ऋद्धमस्तु जनसकलमंगलम्।।ऋ।।

जैसे आकाश में सब लोगों की गति होती है, वैसे ही सबके शरण-भूत तुम्हारे उदय से लोक का संपूर्ण मंगल सिद्ध हो, लोक का संपूर्ण मंगल समृद्ध हो।।ऋ।।

गीतैर्वाद्यविजृम्भितैरुपचितैः कण्ठोत्थसप्तस्वरै-
र्नृत्यैः साभिनयैश्चलत्पदकरैर्नेत्रार्धसंवीक्षितैः।
पुंसां हर्षवशात् सतालमुखरैर्वामांगनानां कृतै-
र्लुम्बिन्यामभिनन्दितोऽजनि नृणां क्षेमाय बुद्धांकुरः।।8।।

बाजों से उत्कर्ष पाए हुए, कंठ से उठे सातों स्वरों से समृद्ध, हाथ पैर चलाकर, अधखुली आंखों से देखने की क्रिया करके, अभिनय से युक्त, ताली बजा-बजा कर उमंग से भरे स्त्री-पुरुषों के द्वारा किए गए गीतों तथा नृत्यों द्वारा अभिनन्दित, मानवों का कुशल-क्षेम करने के लिए, बुद्धांकर लुम्बिनी में उत्पन्न हुआ।।8।।

पीत्वा तृप्तिमवाप्नुवन्ति न जना नेत्रैः स्वरूपामृतं
पश्यन्तीव निमेषहीननयनैः पुष्पच्छलैः पादपाः।
द्यौरभ्रस्य तनोति तं सुखयितुं रम्यं वितानं क्षणाद्
आनन्देन मुहुर्मुहुश् चलति भूर्दोलोत्सवं तन्वती।।9।।

नेत्रों से उनके स्वरूप रूपी अमृत का पान कर लोग न अघाते थे। पेड़ अपने फूलों के व्याज के बिना पलक मारे नेत्रों से उन्हें निहार से रहे थे। हर्ष से उन्हें सुखी करने के लिए द्यौ उनके ऊपर मेघ का चंदवा तान रही थी। आनन्द से पृथ्वी दोलोत्सव मनाती सी बारंबार डोल उठती थी।।9।।

मायायाः परमां मुदं जनयते शुद्धोदनस्य श्रियं
शाक्यानां गणजातिमुन्नमयते लोके नराणां गतिम्।
सत्त्वानां बहु कुर्वते हितसुखं नृणां कुदृष्टेः शमं
लोकानुद्धरते महाकरुणया नाथाय तुभ्यं नमः।।10।।

माया देवी में परम-आनन्द तथा शुद्धोदन में श्री को उपजाने वाले, शाक्यों की गण-गठित जाति को तथा लोक में मानव-जन्म को ऊंचा

उठाने वाले, प्राणियों को विपुल सुख देने वाले तथा मनुष्यों की कुदृष्टि को उपशान्त करने वाले, अपनी महाकरुणा से लोकोद्धारकारक (लोक के) नाथ तुम्हें नमस्कार हो।।10।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
जन्ममंगलाभिधानः
प्रथमः प्रसंगः।।

द्वितीयः प्रसंगः

असितागमनम्

कर्णाकर्णिकयादितो जनपदे श्रीलुम्बिनीभूषिते
पश्चाच्छ्रीकपिलाख्यवास्तुनिपुरे शुद्धोदनो यत्प्रभुः।
आप्रालेयगिरेस्ततः सुकृतिमद्दिव्यर्षिदिव्याश्रयाद्
आविन्ध्यात् सुगतांकुरोद्भवकथाचर्चा प्रवृत्ता जने।।11।।

कानों कान पहले श्री लुम्बिनी-वन से विभूषित ग्राम-मंडल में, अनन्तर श्री कपिलवस्तु नामक नगर में, जिसके शासक शुद्धोदन थे, फिर पुण्यवन्त दिव्य ऋषियों के दिव्य आश्रयभूत हिमालय एवं विन्ध्याचल तक बुद्धांकुर की जन्म कथा की वार्ता लोगों में फैल गई।।11।।

एको रम्यकथां श्रृणोति हि जनाद् या बोधिसत्त्वानुगाम्
अन्यस्मै स विभूष्य तां कथयति प्रीत्या प्रसन्नान्तरः।
एवं मंगलजन्म तस्य जगतां मांगल्यमूर्तेः स्फुटं
सर्वाप्यत्र विदां चकार जनता भक्त्या नताप्युन्नता।।12।।

बोधिसत्त्वसंबंधी जो रमणीयकथा कोई किसी आदमी से सुनता, तो उसका दूसरे से प्रेम पुलकित हृदय से, बनाव-संवार करके वर्णन करता। इस प्रकार उस जगत् के मूर्तिमान मंगलमय (महासत्त्व के) मंगलमय जन्म को भक्तिवश विनम्र होती हुई भी (स्वाभिमान से) उन्नत सभी जनता ने जान लिया।।12।।

श्रुत्वा तस्य भवं भवार्तिशमनं सन्मंगलानां निधिं
मत्वा भारतवर्षभाग्यमतुलं तज्जन्मनालंकृतम्।
बुद्ध्वा सर्वमनामयं तदुदितेनास्मिन् धरामण्डले
निष्कामोऽप्यसितोऽगमच्छिशुवरं तं द्रष्टुकामो मुनिः।।13।।

उत्तम मंगलों के निधि-स्वरूप, भव के दुःखों को शान्त करने वाले उनके उद्भव को सुनकर, उनके जन्म से अलंकृत भारत वर्ष के भाग्य को

अतुलनीय मान कर, उनके उदय से इस पृथ्वी मंडल में होने वाले सब कल्याण को समझ कर, कामना हीन होते हुए भी मुनि 'असित' उन उत्तम शिशु के दर्शन की कामना से आ गए।।13।।

श्रीशुद्धोदनभूपतिर्मुनिवरं तं पूजयित्वादराद्
आत्मानं च सराज्यबान्धवजनं तस्मै समर्प्याखिलम्।
किं तद्यत्करवाणि ते प्रियमिह प्राप्तस्य कृत्वा कृपां
शिष्यं शाधि महामुने द्रुतमिति प्रोवाच बद्ध्वांजलिम्।।14।।

श्रीशुद्धोदन महाराज ने आदर से उन मुनिवर की पूजा कर, राज्य तथा बान्धवजनों सहित पूर्णतया अपने को उन्हें समर्पित कर, हाथ जोड़कर कहा आप कृपा करके पधारें, आपका क्या प्रिय करूं? हे मुनिवर, मुझे शिष्य को बिना विलंब आज्ञा दीजिए।।14।।

नार्थे मे वसुना न कोऽपि नृपतेर्नार्थे न राज्येन मे
नार्थः कोऽपि गृहैर्ममास्मि मुदितो हित्वा गृहान्निर्जने।
यद्यत् तेऽर्पितमद्य मे जनधनं तत्तत्तवैवास्तु भोः
कामो मे तव सूनुमीक्षितुमहो तं केवलं पूरय।।15।।

हे महाराज, मेरा न धन से कोई प्रयोजन है, न राज्य से। घर-बार से भी मेरा कोई प्रयोजन नहीं हैं। घर बार छोड़ मैं निर्जन (वन) में सुखी हूं। आज तुमने जो जन-धन मुझे समर्पित किया है वह तुम्हारा ही हो। मेरी अभिलाषा तुम्हारे पुत्र का दर्शन करने की है, केवल उसी को पूर्ण करो।।15।।

श्रेष्ठस्यापि तथा समीक्ष्य हृदयं प्रीतं परं स्वात्मजे
राजा हर्षभरानतः स विदधत् कामं सकामं मुनेः।
धात्र्यंके सुविराजितं निजसुतं पूर्णेन्दुरम्याननं
प्रीत्या लोकमनोहरं मुनिवरस्याग्रे समानीतवान्।।16।।

अपने पुत्र में यों अत्यन्त प्रीतिमान् उन श्रेष्ठ मुनि के हृदय की समीक्षा कर, हर्ष के भार से नम्र उन राजा ने उनकी कामना को पूर्ण करने के उद्देश्य से धात्री की गोद में विराजमान, पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर बदन वाले, लोगों के मन को हरण करने वाले, अपने पुत्र को मुनिवर के संमुख ला दिया।।16।।

लोकालोकमनोहरं शिशुवरं सर्वार्थसिद्धिप्रदं
पूर्णं लक्षणसम्पदा विपुलतां रूपश्रियो विभ्रतम्।
साक्षादंकुरितं तथागतमहावृक्षस्य बीजं गणे
शाक्यानामवलोक्य शाक्यनृपतिं ब्रह्मर्षिरेवं जगौ।।17।।

जगत् के आलोकभूत एवं मनोहारी सब अर्थो की सिद्धि देने वाले, (महापुरुषों की) लक्षण सम्पत्ति से पूर्ण, रूप-शोभा की विपुलता के पोषक, बुद्ध रूपी महावृक्ष के शाक्यगण के बीच साक्षात् अंकुरित हुए बीज, उन शिशुवर को देख शाक्यराज से (उन) ब्रह्मर्षि ने यों गीत में कहा।।17।।

असितर्षिः (असित-ऋषि)

मध्ये भ्रुवोः परमरमणीयं दक्षिणतः परिवृत्तम्।
उर्णाकोषमवैतु महासत्त्वे धर्मश्रीनृत्तम्।।
लक्षणलक्षितमतिसुकुमारम्।
पश्यतु सुगतांकुरं कुमारम्।।अ।।

दोनों भौहों के बीच, दक्षिण से घूमे हुए, महासत्त्व के अत्यन्त सुन्दर ऊर्णा-कोष को धर्म-श्री का नृत्त (नृत्य) समझो। लक्षणों से पहचान लिए गए, इन अत्यन्त सुकुमार, कुमारभूत, बुद्धांकुर का दर्शन करो।।अ।।

जानुलंबिनौ बालतनावप्यतिमानुषावबालौ।
विश्वमिदं रक्षितुमवगच्छतु भुजावस्य सुविशालौ।।
लक्षणलक्षितमतिसुकुमारम्।
पश्यतु सुगतांकुरं कुमारम्।।आ।।

इनके बाल-शरीर पर अबाल-भूत, अमानवीय, घुटनों तक लंबी-लंबी अत्यन्त विशाल भुजाओं को इस विश्व का रक्षण करने वाली समझो। लक्षणों से पहचान लिए गए, इन अत्यन्त सुकुमार, कुमारभूत, बुद्धांकुर का दर्शन करो।।आ।।

मारविमर्दनमिदं बोधयतु जालांकितकरचरणम्।
नूनमयं भविता सकलनां लोकानामिह शरणम्।।
लक्षणलक्षितमतिसुकुमारम्।
पश्यतु सुगतांकुरं कुमारम्।।इ।।

इन रेखाजाल से समन्वित करचरणों को मार को मसल डालने वाला

समझो। ये निश्चय ही यहां पर सब लोगों के शरण होंगे। लक्षणों से पहचान लिए गए, अत्यन्त सुकुमार, कुमारभूत, बुद्धांकुर का दर्शन करो।।इ।।

विनिभालयतु चक्रपरिमंडितपादावस्य सुरम्यौ।
सत्यमस्य लोके भवितारावुभौ नृदेवौ दम्यौ।।
लक्षणलक्षितमतिसुकुमारम्।
पश्यतु सुगतांकुरं कुमारम्।।ई।।

इनके चक्रचिह्नों से विभूषित सुन्दर चरणों को ध्यान से देखो। सचमुच मनुष्य और देवता दोनों ही इनके विनेय-शिष्य होंगे। लक्षणों से पहचान लिए गए, इन अत्यन्त सुकुमार, कुमारभूत बुद्धांकुर का दर्शन करो।।ई।।

वारणवस्तिकोषमवगच्छतु ह्रीसंरक्षणकोषम्।
मारवधूरपि वन्दितुमुत्का भवितैनं गतदोषम्।।
लक्षणलक्षितमतिसुकुमारम्।
पश्यतु सुगतांकुरं कुमारम्।।उ।।

इनके वारणवस्तिकोष को लज्जा की रक्षा करने वाला कोष समझो। इन दोषहीन (महासत्त्व) की वन्दना करने के लिए मारवधू (रति) भी उत्सुक होगी। लक्षणों से पहचान लिए गए, इन अत्यन्त सुकुमार, कुमारभूत बुद्धांकुर का दर्शन करो।।उ।।

स्मितं विभावयतु प्रसन्नमधिवदनं विस्मयजननम्।
रवेरुदितमिव सकलदृष्टितमसो लोकानां शमनम्।।
लक्षणलक्षितमतिसुकुमारम्।
पश्यतु सुगतांकुरं कुमारम्।।ऊ।।

इनके मुख पर विस्मयोत्पादक, मंदहास की ओर ध्यान तो दो। जैसे सूर्योदय से लोगों के नेत्रों के आगे का सब अंधकार नष्ट हो जाता है, वैसे यह मन्दहास लोगों के सब दृष्टिगत अंधकार को दूर करने वाला है। लक्षणों से पहचान लिए गए, इन अत्यन्त सुकुमार, कुमारभूत बुद्धांकुर का दर्शन करो।।ऊ।।

वदनं वचनविहीनं संप्रति कलयतु जनयत्तोषम्।
प्रवचनकृज्जनयिता ध्रुवं लोकस्य सत्यसंतोषम्।।
लक्षणलक्षितमतिसुकुमारम्।
पश्यतु सुगतांकुरं कुमारम्।।ऋ।।

अभी न बोलने वाला मुख संतोष उपजा रहा है   इस बात को मन में करो। जब यह प्रवचन करेगा, तब निश्चय ही लोक के लिए सच्चा संतोष उपजाएगा। लक्षणों से पहचान लिए गए, इन अत्यन्त सुकुमार, कुमारभूत, बुद्धांकुर का दर्शन करो।।ऋ।।

अवलोकयतु दृशैव द्वन्द्वहरमेनं बालमबालम्।
मार्गमवश्यं लब्धा लोकोऽनेन विगतकलिजालम्।।
लक्षणलक्षितमतिसुकुमारम्।
पश्यतु सुगतांकुरं कुमारम्।।ॠ।।

अपनी दृष्टि से ही द्वन्द्वों को हरने वाले इन अबालभूत बालक को देखो। इनके द्वारा जगत को कलहजाल से मुक्त (धर्म का) मार्ग अवश्य मिलेगा। लक्षणों से पहचान लिए गए, अत्यन्त सुकुमार कुमारभूत, बुद्धांकुर का दर्शन करो।।ॠ।।

तं शौद्धोदनिमादरेण परमेणोद्वीक्षमाणो मुनी
रम्यं गीतमुदीर्य शाक्यनृपतेस्तुष्टिं व्यधाद् व्याकृतैः।
पश्चात् किं तु मनस्यभूत् किमपि यद् ब्रह्मर्षिरेष क्षणाद्
आकाशोन्मुखवाष्पपूर्णनयनः संरुद्धकंठोऽभवत्।।18।।

उन शुद्धोदन के पुत्र को अत्यन्त आदर से देखते हुए, रमणीय गीत कहकर, भविष्य-वाणियों द्वारा मुनि ने शाक्यराज को संतुष्ट किया। पर बाद में उनके मन में कुछ ऐसी बात आई कि ये ब्रह्मर्षि आकाश की ओर मुख करके निहारने लगे, उनकी आंखों में आंसू आ गए, तथा उनका गला रुँध गया।।18।।

दृष्ट्वा गद्गदकंठमेवमवनेस्तं दैवतं तत्क्षणाच्-
छोकेनाकुलचेतसा परिगतं बाष्पाम्बुपूर्णेक्षणम्।
भीतो भूमिपतिः कुमारविषये संदेहपूर्णान्तरः
कृत्वा मूर्धनि याचनांजलिमिमां दीनां बभाषे गिरम्।।19।।

उसी क्षण गला भर आए, शोक व्याकुल चित्त से युक्त, आंसुओं के जल से भरी आंखों वाले हो गए, उन देवर्षि को देख राजा डर गए, कुमार के विषय में उनके भीतर शंका भर गई, माथे पर याचना के भाव से अंजलि बांध, वे दीन-वाणी में यों बोले।।19।।

राजा

सकलबन्धुजन-निखिलसंघजन-सपुरराष्ट्रजनहर्षम् ।
सांवत्सरिकदेवविद्ब्राह्मणकथितबहुविधोत्कर्षम् ।।
सकललोकहितमिममुपजातम् ।
उक्त्वा किं रोदिषि सविषादम् ।।अ ।।

सब बन्धु-जनों के, सब गण-जनों के तथा नगर-सहित (सब) ग्राम-जनों के आनन्दस्वरूप, ज्योतिषियों तथा भाग्य-फल बताने वाले ब्राह्मणों द्वारा कहे गए बहुत प्रकार के अभ्युदय के पात्र-भूत, इन्हें सकल लोक के हितार्थ उत्पन्न हुआ कहकर, आप शोक से क्यों रो रहें हैं? ।।अ ।।

नरनारीगण-बालबालिकागण-नर्तनोपचारम् ।
कलकंठोद्गतसंगीतध्वनिकृतबहुविधसत्कारम् ।।
सकललोकहितमिममुपजातम् ।
उक्त्वा किं रोदिषि सविषादम् ।।आ ।।

स्त्री पुरुषों तथा बालक-बालिकाओं के नाच से पूजित, मीठे गलों से निकली हुई गीतों की ध्वनि से बहुत प्रकार से सत्कृत, इन्हें सकल लोक के हितार्थ उत्पन्न हुआ कहकर आप शोक से क्यों रो रहे हैं? ।।आ ।।

लक्षणसूचितनिश्चितमहापुरुषताभूषितदेहम् ।
बोधिमवाप्स्यन्तं व्यपगतकलिकलुषमोहसंदेहम् ।।
सकललोकहितमिममुपजातम् ।
उक्त्वा किं रोदिषि सविषादम् ।।इ ।।

लक्षणों के द्वारा अभिव्यक्त निश्चित रूप से होने वाले महापुरुषभाव से अलंकृत शरीर वाले, कलह-झगड़ों के मालिन्य तथा मोह एवं संदेह से रहित, अनागत में बोधि के लाभी, इन्हें सकल लोक के हितार्थ उत्पन्न हुआ कहकर आप शोक से क्यों रो रहे हैं? ।।इ ।।

रागद्वेषविधूनन-हिंसोन्मूलन-शान्तिनिधानम् ।
निखिललोकसज्जनसंपादितपूजनयोग्यनिदानम् ।।
सकललोकहितमिममुपजातम् ।
उक्त्वा किं रोदिषि सविषादम् ।।ई ।।

राग और द्वेष के विनाशक, हिंसा के उन्मूलनकारी, शान्ति के कोष-भूत, लोक भर में सज्जनों द्वारा की जाने वाली पूजा के उचित निमित्त, इन्हें सकल लोक के हितार्थ उत्पन्न हुआ कहकर आप शोक से क्यों रो रहे हैं?।।ई।।

निजजन्महितसकलधान्यधनसुखसमृद्धिवैपुल्यम्।
स्वात्मनैव निजपरममनोहररूपराशिना तुल्यम्।।
सकललोकहितमिममुपजातम्।
उक्त्वा किं रोदिषि सविषादम्।।उ।।

अपने जन्म द्वारा सब धन-धान्य एवं सुख सम्पत्ति की विपुलता करने वाले, अपनी अत्यन्त मनोहारी रूप-राशि में अपने से ही उपमा के योग्य, इन्हें सकल लोक के हितार्थ उत्पन्न हुआ कह कर आप शोक से क्यों रो रहे हैं?।।उ।।

सनगरजनपदमंडललोकसमूहविदितवृत्तान्तम्।
लब्धनूतनोदयौषधिप्रियतमसमानमतिकान्तम्।।
सकललोकहितमिममुपजातम्।
उक्त्वा किं रोदिषि सविषादम्।।ऊ।।

नगरों और ग्रामों के मंडल के बीच जनता के समूह में अपने वृत्तान्त से प्रसिद्ध नए उदय होने वाले औषधिपति-चन्द्रमा के समान अत्यन्त मनोहर, इन्हें सकल लोक के हितार्थ उत्पन्न हुआ कह कर आप शोक से क्यों रो रहे हैं?।।ऊ।।

हृतबहुधापरिपीडितदुःखनिमग्नविश्वजनपीडम्।
शरणहीनजनहेतुपरमशरणप्रदसुखैकनीडम्।।
सकललोकहितमिममुपजातम्।
उक्त्वा किं रोदिषि सविषादम्।।ऋ।।

बहुत प्रकार से सताई जाने वाली, दुःख में डूबी हुई विश्व की जनता की पीड़ा को हरने वाले, शरण हीन लोगों के लिए उत्तम शरण का दान करने वाले, सुख के अद्वितीय आश्रय, इन्हें सकल लोक के हितार्थ उत्पन्न हुआ कह कर आप क्यों शोक कर रहे हैं?।।ऋ।।

व्याकृतमिह बहुविधं तथागतपदमनुपमलब्धारम्।
लोकान् अमृतमयीं वृष्टिं विधाय सुतरां त्रातरम्।।

सकललोकहितमिममुपजातम्।
उक्त्वा किं रोदिषि सविषादम्।।ॠ।।

यहां बुद्ध के अनुमप-पद के प्राप्तकर्ता के रूप में तथा अमृतमयी वृष्टि कर लोगों के भूरि-भूरि रक्षक के रूप में बहुत प्रकार के भविष्यवाणी के पात्रभूत इन्हें सकल लोक के हितार्थ उत्पन्न हुआ कह कर आप शोक से क्यों रो रहे हैं?।।ॠ।।

असितर्षिः (असित-ऋषि)

धृतकाषायपटं कुर्वन्तं हृदयं वीतकषायम्।
धर्मामृतवर्षेण निरुन्धन्तं क्लेशाग्निमपायम्।।
न श्रोष्यामि वदन्तं वीरम्।
इति रोदिमि समयो मम यातुं हन्त विहाय शरीरम्।।अ।।

कषाय से रंगे वस्त्र को पहने, (लोगों के) हृदय को काषाय रहित (=मालिन्य-रहित) करते हुए, धर्म की अमृत वर्षा से क्लेश की आग वाले नरक को बुझाते हुए, प्रवचन करते हुए इन वीर की बात न सुन सकूंगा। इसलिए मैं रो रहा हूं। ओह! शरीर छोड़कर (इस लोक से) जाने का मेरा समय आ गया है।।अ।।

वन्द्यमानमनुपमं सकललोकैर्विधत्तबहुमानम्।
माननीयमिह महामानिलोकैरपि गताभिमानम्।।
न श्रोष्यामि वदन्तं वीरम्।
इति रोदिमि समयो मम यातुं हन्त विहाय शरीरम्।।आ।।

सब लोगों के द्वारा बहुमानपूर्वक वंदना किए गए, अनुपम, यहां महामानी लोगों के द्वारा भी माननीय, अभिमान-रहित, प्रवचन करते हुए, इन वीर की बात न सुन सकूंगा, इसलिए मैं रो रहा हूं। ओह! शरीर छोड़कर (इस लोक से) जाने का मेरा समय आ गया है।।आ।।

एककुलं धर्मैककुलं नूतनं जने जनयन्तम्।
उच्चावचनीचोच्चसकलनृकुलाग्रहमुपशमयन्तम्।।
न श्रोष्यामि वदन्तं वीरम्।
इति रोदिमि समयो मम यातुं हन्त विहाय शरीरम्।।इ।।

लोक में एक-कुल, धर्म द्वारा अद्वितीय कुल उपजाते हुए नाना प्रकार के नीच और उच्च सभी मनुष्यों के कुल-गत आग्रह को शान्त करते हुए, प्रवचन करते हुए, इन वीर की बात न सुन सकूंगा, इसलिए मैं रो रहा हूं। ओह! शरीर छोड़कर (इस लोक से) जाने का मेरा समय आ गया है।।इ।।

आसुमेरुमस्तकात् कुमेरोश्चरमकोटिपर्यन्तम्।
उदयास्ताचलयोर्मध्ये जनमिममेकीकुर्वन्तम्।।
न श्रोष्यामि वदन्तं वीरम्।
इति रोदिमि समयो मम यातुं हन्त विहाय शरीरम्।।ई।।

सुमेरु (उत्तर ध्रुव) के मस्तक से कुमेरु (दक्षिण ध्रुव) की चरमकोटि तक उदयाचल तथा अस्ताचल के बीच इस मानवलोक को मिलाकर एक करते हुए, प्रवचन करते हुए, इन वीर की बात न सुन सकूंगा, इसलिए मैं रो रहा हूं। ओह! शरीर छोड़कर (इस लोक से) जाने का मेरा समय आ गया है।।ई।।

धर्मेणाभ्युदयस्य मार्गमनुपमं जनान् गमयन्तम्।
नरसुरपूजनयोग्यमिमं मानवं गुणै रचयन्तम्।।
न श्रोष्यामि वदन्तं वीरम्।
इति रोदिमि समयो मम यातुं हन्त विहाय शरीरम्।।उ।।

लोगों को धर्म के द्वारा उन्नति का अनुपम मार्ग प्राप्त कराते हुए, इस मनुष्य मात्र को गुणों के द्वारा मनुष्यों एवं देवताओं के लिए पूजनीय बनाते हुए, प्रवचन करते हुए, इन वीर की बात न सुन सकूंगा, इसलिए मैं रो रहा हूं। ओह! शरीर छोड़ कर (इस लोक से) जाने का मेरा समय आ गया है।।उ।।

करुणौघेन विहिंसातीव्रज्वलनं संशमयन्तम्।
मैत्र्या वधबन्धोद्धतयुद्धकथामखिलां तिरयन्तम्।।
न श्रोष्यामि वदन्तं वीरम्।
इति रोदिमि समयो मम यातुं हन्त विहाय शरीरम्।।ऊ।।

करुणा की बाढ़ से हिंसा की दहकती आग बुझाते हुए, मैत्री-द्वारा बध, बन्धन तथा ऊधम मचाने वाली युद्ध की सब कथा पर मिट्टी डालते हुए, प्रवचन करते हुए, इन वीर की बात न सुन सकूंगा, इसलिए मैं रो रहा हूं। ओह! शरीर छोड़कर (इस लोक से) जाने का मेरा समय आ गया है।।ऊ।।

स्वप्रज्ञया विभिन्नविविधमतजालं संछिन्दन्तम्।
धर्ममयं विश्वैकराज्यमुपदिश्य कलिं भिन्दन्तम्।।
न श्रोष्यामि वदन्तं वीरम्।
इति रोदिमि समयो मम यातुं हन्त विहाय शरीरम्।।ऋ।।

अपनी प्रज्ञा से भिन्न-भिन्न नाना प्रकार के मतों के जाल का छेदन करते हुए, जगत् में एक धर्ममय राज्य-प्रतिष्ठा का उपदेश देकर (लोक) कलह को भेदन करते हुए, प्रवचन करते हुए इन वीर की बात न सुन सकूंगा, इसलिए मैं रो रहा हूं। ओह! शरीर छोड़कर (इस लोक से) जाने का मेरा समय आ गया है।।ऋ।।

सर्वैर्नृभिर्नृपैर्नृनृपाणां ललनाभिः कृतपूजम्।
बुद्धं मारविमर्दनमेतं शाक्यनृपस्य तनूजम्।।
न श्रोष्यामि वदन्तं वीरम्।
इति रोदिमि समयो मम यातुं हन्त विहाय शरीरम्।।ॠ।।

सब मनुष्यों के द्वारा, मनुष्याधिराजों के द्वारा मानव-ललनाओं के द्वारा राजांगनाओं के द्वारा पूजा किए गए, मार को मसल डालने वाले शाक्यराज के बुद्ध होने वाले इन पुत्र की, प्रवचन करते हुए इन वीर की बात न सुन सकूंगा, इसलिए मैं रो रहा हूं। ओह! शरीर छोड़कर (इस लोक से) जाने का मेरा समय आ गया है।।ॠ।।

मामेवं प्ररुदन्तमैक्ष्य नृपते त्वं कातरो मा स्म भूर्
यद्यत् किंचिदवोचमस्मि सकलं तत्तद् ध्रुवं सेत्स्यति।
इत्येवं समुदीर्य शाक्यनृपतिं दत्वाशिषं मंगलां।
विप्रो राजकुलात्स्वमाश्रममगात् सर्वैर्जनैर्वन्दितः।।20।।

हे राजन, मुझे यों रोते देख तुम्हें कातर नहीं होना चाहिए। मैंने जो जो बात कही है, वह सब सच्ची उतरेगी। ऐसा शाक्यराज से कह कर, उन्हें मंगलमय आशीर्वाद दे कर, सब लोगों के द्वारा वंदित, विप्र असित अपने आश्रम चले गए।।20।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
ऽसितागमनाभिधानो
द्वितीयः प्रसंगः।।

तृतीयः प्रसंगः

गोपापरिग्रहः

सर्वार्थानुदयोन्मुखान् निजपितुः कृत्वोदयेनात्मनः
सिद्धार्थोऽत्र दिने दिने निजवयोवृद्ध्या समं वर्धयन्।
क्रीडाभिः शिशुताक्षणे शिशुजनैः सार्धं कुलं नन्दयन्
कौमारे गुरुमाश्रितो लघु सुधीर् विद्यास्वधीती बभौ।।21।।

अपने उदय से अपने पिता के सब अर्थों को उदयोन्मुख करके दिन-प्रतिदिन अपनी आयु की वृद्धि के साथ उन्हें बढ़ाते हुए, बचपन में बच्चों के साथ क्रीड़ाओं के द्वारा कुल को आनन्दित करते हुए, कुमार अवस्था में गुरु के आश्रित होकर शीघ्र ही, अत्यन्त बुद्धिमान् सिद्धार्थ कुमार विद्याओं में पारंगत हो, शोभा देने लगे।।21।।

कन्यानां स्पृहणीयमात्मतनुजे दृष्ट्वोद्गतं यौवनं
राजा पुत्रवधूं गणाद् वरयितुं प्रेक्षांचकारोत्तमाम्।
भावं तद्विषयं कुमारसुहृदां जिज्ञासमानो मुखात्
लेभे शाक्यगणाधिके निजसुतस्येमां नवीनां गिरम्।।22।।

अपने पुत्र में कन्याओं की कामना के योग्य उदित हुए, नए यौवन को देखकर, (शाक्य) गण से उत्तम पुत्रवधू चुनवाने के लिए राजा ने मन में सोचा। शाक्य गण के राजा ने कुमार के मित्रों द्वारा इस विषय में कुमार का भाव जानना चाहा और अपने पुत्र का यह नवीन वाचनिक (संदेश) प्राप्त किया।।22।।

कुमारः

या रूपेण भवेद् रमणीया गुणैर्नन्दयेच्चित्तम्।
या रज्येन्मय्येव चिन्तयेन्न बहिर्वसुधावित्तम्।।
वृणुयामहं कुमारीम्।
तां धर्माचरणैकसहायां कमनीयां सुकुमारीम्।।अ।।

जो रूप से रमणीय होगी, गुणों से चित्त को आनन्दित करने वाली होगी, जो मुझ में ही रमेगी और बाहर की भूमि एवं धन-सम्पत्ति की चिन्ता नहीं करेगी, धर्मचर्या में एकमात्र सहायक, उस सुन्दर एवं सुकुमारी कुमारी का मैं वरण करूंगा।।अ।।

जातायामपि महाकुले यस्यां न भवेदभिमानः।
हीनकुलेऽपि समुत्पन्नायामपि नहि भवेद् विमानः।।
वृणुयामहं कुमारीम्।
तां धर्माचरणैकसहायां कमनीयां सुकुमारीम्।।आ।।

महाकुल में उत्पन्न होकर जिसमें अभिमान न होगा तथा हीन कुल में उत्पन्न होकर भी जो (मन में अपने को) अपमानित नहीं अनुभव करेगी, धर्मचर्या में एकमात्र सहायक, उस सुन्दर एवं सुकुमारी कुमारी का मैं वरण करूंगा।।आ।।

आवाहेऽथ विवाहे जातिं या गणयेन्न सुशीला।
यान्त्यायान्ति गुणा जातिं दृष्ट्वा न हीति मतिशीला।।
वृणुयामहं कुमारीम्।
तां धर्माचरणैकसहायां कमनीयां सुकुमारीम्।।इ।।

जो कन्या के देने तथा लेने में जाति का विचार करने वाली नहीं होगी, गुण किसी की जाति को देखकर नहीं आते-जाते हैं ऐसा जो मन में मनन करने वाली होगी, धर्मचर्या में एक मात्र सहायक, उस सुन्दर एवं सुकुमारी का मैं वरण करूंगा।।इ।।

या प्रोषिते न पत्यौ विहरेत् कदापि परगतचित्ता।
या व्यभिचरति पतिं न भाग्यवैगुण्येऽप्यपगतवित्ता।।
वृणुयामहं कुमारीम्।
तां धर्माचरणैकसहायां कमनीयां सुकुमारीम्।।ई।।

जो पति के प्रवासी होने पर कभी भी पर पुरुष में मन लगा कर विहार करने वाली नहीं होगी, जो भाग्य की उलट-पलट से निर्धन होकर भी पतिव्रता धर्म नहीं तोड़ेगी, धर्मचर्या में एक मात्र सहायक, उस सुन्दर एवं सुकुमारी कुमारी का मैं वरण करूंगा।।ई।।

श्वश्रूं मात्रीयेत् सततं या सौभाग्येऽपि न मत्ता।
पित्रीयेत् श्वशुरं कुशला कुलकर्मसु सदाप्रमत्ता।

वृणुयामहं कुमारीम्।
तां धर्माचरणैकसहायां कमनीयां सुकुमारीम्।।उ।।

जो नित्य सास को मां के समान मानने वाली होगी, अपने सौभाग्य पर भी मतवाली न होगी, ससुर को पिता के समान मानेगी, कुल के कार्यों में चतुर तथा सदा प्रमाद न करने वाली होगी, धर्माचर्या में एकमात्र सहायक, उस सुन्दर एवं सुकुमारी कुमारी का मैं वरण करूंगा।।उ।।

विद्याकलासु कुशला कुशले यस्या मतिर्न लोला।
या शीलैकभूषणा रत्नकनकभूषणेष्वलोला।।
वृणुयामहं कुमारीम्।
तां धर्माचरणैकसहायां कमनीयां सुकुमारीम्।।ऊ।।

जो विद्याओं और कलाओं में कुशल होगी तथा जिसकी बुद्धि पुण्य में अटल होगी, जो शील के अद्वितीय अलंकार से युक्त होगी तथा सुवर्ण एवं रत्नों के आभूषणों में मन दौड़ाने वाली न होगी, धर्मचर्या में एक मात्र सहायक, उस सुन्दर एवं सुकुमारी कुमारी का मैं वरण करूंगा।।ऊ।।

या मात्रया पिबेद् भुञ्जीत मितव्ययशीला धन्या।
या संरक्षेद् गृहवस्तूनि कुलं पालयेत् सुकन्या।।
वृणुयामहं कुमारीम्।
तां धर्माचरणैकसहायां कमनीयां सुकुमारीम्।।ऋ।।

जो मात्रा से खाने-पीने वाली होगी, स्वभाव से मितव्ययी होगी, धन्य होगी, जो घर की वस्तुओं की रक्षा करने वाली होगी, जो शोभन कन्या कुल का पालन करने वाली होगी, धर्मचर्या में एकमात्र सहायक, उस सुन्दर एवं सुकुमारी कुमारी का मैं वरण करूंगा।।ऋ।।

किं बहुना पतिमुपकुर्वीत जनेष्वपि करुणां कुर्यात्।
नित्यं या हितमतिश्चरेत् कुशलं चित्ते संतनुयात्।।
वृणुयामहं कुमारीम्।
तां धर्माचरणैकसहायां कमनीयां सुकुमारीम्।।ॠ।।

अधिक क्या? जो पति के लिए उपकारक होगी, लोगों पर भी करुणा करने वाली होगी, सदा हितबुद्धि से चलने वाली होगी, चित्त में शुभचिन्तन करने वाली होगी, उस धर्मचर्या में एकमात्र सहायक, उस सुन्दर एवं सुकुमारी कुमारी का मैं वरण करूंगा।।ॠ।।

एवं पुत्रमनोरथं विदितवाञ्छाक्याधिनाथो द्विजान्
कन्यां सर्वगुणान्वितां मृगयितुं शीघ्रं समादिष्टवान्।।
तेभ्यो दण्डपदण्डपाणितनुजां श्रुत्वा स्वपुत्रोचितां
तां सिद्धार्थविलोचनप्रणयिनीं कर्तुं चकारोत्सवम्।।23।।

इस प्रकार पुत्र के मनोरथ को जानकर शाक्यराज ने ब्राह्मणों को शीघ्र ही सब गुणों से युक्त कन्या खोजने के लिए कहा। उनसे दण्ड से (प्रजा-) पालक दण्डपाणि की पुत्री को अपने पुत्र के योग्य सुनकर, उसे सिद्धार्थ की दृष्टि में डालने के निमित्त उत्सव किया।।23।।

कन्यानां वितरन्नुपायनमसौ तस्मिन् कुमारो महे
व्याक्षिप्तो न कयापि चेतसि कृतै र्नेत्रार्धसंवीक्षितैः।
गोपा तं तु वितीर्णभाण्डमगमद् यस्मिन् क्षणे सस्मिता
तस्मिन्नेव क्षणेऽङ्गुलीयकमसौ चित्तेन सार्धं ददौ।।24।।

उस उत्सव में कन्याओं को उपहार बांटते हुए किसी की भी तिरछी चितवनों से अपने हृदय में कुमार चंचल न हुए। पर जिस क्षण गोपा उपहार की वस्तुओं के बांट देने पर मुस्कराती हुई उनके पास गई, उन्होंने उसी क्षण उसे अपनी अंगूठी अपने चित्त के साथ दे डाली।।24।।

गोपायामनुरक्तमात्मजमनो ज्ञात्वार्थितस्तद्गुरुम्
तेनैवं न कृतं प्रदातुमनसा वीरोत्तमायात्मजाम्।
तस्मादात्मयशोऽभिरक्षितुमसौ गोपां ग्रहीतुं तथा
शिल्पं दर्शयितुं दिदेश नृपतिं कर्तुं गणे घोषणाम्।।25।।

अपने पुत्र के हृदय को गोपा में अनुरक्त जानकर (शाक्यराज ने) उसके पिता से प्रार्थना की, पर श्रेष्ठ वीर को कन्या देने की इच्छा से उन्होंने वैसा न किया। इसलिए अपने यश की रक्षा के लिए तथा गोपा का परिग्रह करने के लिए उन (बोधिसत्त्व) ने शिल्प दिखलाने के निमित्त (शाक्य) गण के बीच घोषणा करने की बात राजा से कही।।25।।

गोपामेव यशोधरां कृतवतां लोके पताकां जये
शाक्यानां पुरतोऽभिभूय सकलाञ्छ्रीबोधिसत्त्वे बभौ।
तद् दृष्ट्वा तनुजां निजां निजकरेणादाय मानी महान्
सिद्धार्थाय ददौ नृपस्य विदधौ श्रीदण्डपाणिर्मुदम्।।26।।

विजय के निमित्त गोपा को ही कीर्ति धारण करने वाली पताका बनाकर (इकट्ठे हुए) शाक्यों के सामने सभी को हरा कर बोधिसत्त्व विराजने लगे। उसे देख महामानी श्रीदण्डपाणि ने अपनी पुत्री को हाथ से पकड़कर बोधिसत्त्व को दे दी और राजा को आनन्दित कर दिया।।26।।

सा गोपा श्वशुरालयेपि विवृता तातस्य गेहे यथा
वृद्धानां पुरतोऽवगुण्ठनमृते चर्यां ततानात्मनः।
सर्वेषां हृदयप्रसादमकरोत् मैत्र्या जनानां गणे
मन्यन्ते बहु रूढिमेव हृदये ये तान् कलं सा जगौ।।27।।

गोपा अपने पिता के घर की तरह ही ससुराल में भी बिना परदा किए रहती थी। बड़े-बूढ़ों के सामने घूंघट बिना निकाले अपना कर्तव्यकर्म करती रहती थी। (शाक्य-) गण में अपनी मैत्री की भावना से उन सबके हृदयों को प्रसन्न करती थी। पर जो अपने हृदय में रूढ़ि को ही बहुत मानते थे, उनसे मीठे गीत द्वारा (यों) कहा करती थी।।27।।

गोपा

या स्वयं न ह्रिया युता लोके बिभेति न लज्जया।
या न सत्यप्रावृता नित्यं समा खलु नग्नया।।
किं पटसंवृतवदनया।
द्वयंगुलधीधनया तया।।अ।।

जिसमें अपने आप लज्जा नहीं है, तथा लोगों में भी जिसे लज्जा से भय-संकोच नहीं है, जो सत्य के प्रति प्रवृत्त नहीं है, वह सदा नंगी जैसी ही है। दो-अंगुल की बुद्धि ही जिसका धन है, कपड़े से मुंह ढक कर रहने वाली उससे क्या?।।अ।।

रन्धनालयमेव या कर्त्री विभूषितमात्मना।
किं बहिर्लोकेऽस्ति विज्ञातुं न जाता तन्मना।।
किं पटसंवृतवदनया।
द्वयंगुलधीधनया तया।।आ।।

जो अपने शरीर से रसोई घर की ही शोभा बढ़ाती रहती है। बाहर दुनिया में क्या हो रहा है इसके जानने-बूझने की बात जिनके मन में नहीं आती। दो-अंगुल की बुद्धि ही जिसका धन है, कपड़े से मुंह ढक कर रहने

वाली उससे क्या?।।आ।।

वेत्ति या चोलूखलं कुण्डं च वेत्ति शिलोपलम्।
वेत्ति दास्यं स्वं न लोके मूढतायाः काफलम्।।
किं पटसंवृतवदनया।
द्वयंगुलधीधनया तया।।इ।।

जिसका ज्ञान ऊखल में है, कूंड़ी में है, जिसका ज्ञान सिल बट्टे में है, जो अपनी दासता के विषय में अजाना, दुनिया में मूढ़ता का कुफल जो नहीं जानती। दो अंगुल की बुद्धि ही जिसका धन है, कपड़े से मुंह ढक कर रहने वाली उससे क्या?।।इ।।

पेषणीं गेहे पिनष्टि स्वात्मनात्र सहैव या।
विद्या या न विनात्र सौख्यमिति प्रवेत्ति जने न या।।
किं पटसंवृतवदनया।
द्वयंगुलधीधनया तया।।ई।।

जो घर में अपने-आपके साथ चक्की पीसती रहती है, जो यह नहीं जानती कि दुनिया में विद्या के बिना सुख नहीं है। दो अंगुल की बुद्धि ही जिसका धन है, कपड़े से मुंह ढक कर रहने वाली उससे क्या?।।ई।।

योदकुम्भं संपृणाति स्वं रसेन न जीवनम्।
शास्त्रशिल्पं नास्ति किंचित् हन्त कर्त्री सीवनम्।।
किं पटसंवृतवदनया।
द्वयंगुलधीधनया तया।।उ।।

जो पानी का कलश भरती है पर अपने जीवन में रस नहीं भरती। जिसमें न कोई शिल्प है, न शास्त्र। ओह! जो सीना पिरोना करती रहती है। दो अंगुल की बुद्धि ही जिसका धन है, कपड़े से मुंह ढक कर रहने वाली उससे क्या?।।उ।।

या कुलस्य विभुर्न, दासी दुःखमेव हि यत्फलम्।
रूपमेव बलं क्षणस्थैर्यं हि यस्याः केवलम्।।
किं पटसंवृतवदनया।
द्वयंगुलधीधनया तया।।ऊ।।

जो कुल की स्वामिनी न होकर दासी बन गई है और जिस (दासता) का फल केवल दुख ही है। रूप ही जिसका बल (ताकत) है, जिसकी

स्थिरता क्षणमात्र की है। दो अंगुल की बुद्धि ही जिसका धन है, कपड़े से मुंह ढक कर रहने वाली उससे क्या?।।ऊ।।

तृष्णया धनधान्यसंताने गृहेष्वतिरागतः।
या न चिन्तयतीह किंचित् पुण्यमत्र विरागतः।।
किं पटसंवृतवदनया।
द्वयंगुलधीधनया तया।।ऋ।।

धन-धान्य एवं संतान में तृष्णा के कारण, घर में अत्यन्त आसक्ति के कारण, जो यह अनासक्ति भाव से कोई पुण्य की बात नहीं सोचती है। दो अंगुल की बुद्धि ही जिसका धन है, कपड़े से मुंह ढक कर रहने वाली उससे क्या?।।ऋ।।

या न पुंवद् संप्रगल्भा या न पुंवद्धीधना।
या न पुंवद् वीरभावा या न पुंवज्जीवना।।
किं पटसंवृतवदनया।
द्वयंगुलधीधनया तया।।ॠ।।

जो पुरुष की भांति चतुर नहीं हैं। जिसमें पुरुष की जैसी बुद्धि सम्पत्ति नहीं है। जिसमें पुरुष जैसा वीर-भाव नहीं है। जो पुरुष के समान जीवन नहीं जी पाती है। दो अंगुल की बुद्धि ही जिसका धन है, कपड़े से मुंह ढक कर रहने वाली उससे क्या?।।ॠ।।

ज्ञात्वैवं स यशोधरां नरपती रूपे गुणेषूत्तमां
शीलेनात्मनि संवृते सुविवृतां भर्त्रीं च कर्त्रीं गणे।
प्रीत्या नन्दितुमात्मजामिव निजां संछाद्य रत्नैः पटैः
स्वस्त्याशीर्वचनोपगां शुभगिरं सानन्दमेवं जगौ।।28।।

उन राजा (शुद्धोदन) ने रूप तथा गुणों में उत्तम यशोधरा को, इस प्रकार शील से अपने-आप को ढक कर गण में (सब कुछ) करने-धरने वाली बिलकुल खुले-खजाने रहने वाली, स्वामिनी जानकर उसे अपनी पुत्री की भांति रत्नों एवं वस्त्रों से आच्छादित कर प्रीति से स्वस्ति एवं आशीर्वाद के वचनों से युक्त, शुभ वाणी आनन्द के साथ, गाते हुए यों कहा।।29।।

शुद्धोदनः

कुसुमेनेव सदा वदनेन।
लावण्यं विभाति विवृतेन।।
त्वया वयं बहु-धन्या।
विवृता त्वमसि सुकन्या।।अ।।

सर्वदा बिना ढके फूल के जैसे सुन्दरता प्रतीत होती है, वैसे ही बिना ढके मुख से सुन्दरता का भान होता है। तुझसे हम-सब का बड़ा भाग्य जगा है। तू परदे में न छिपी हुई सुन्दर कन्या है।।अ।।

रत्नेनेव सदा वदनेन।
मूल्यं व्यक्तिमेति विवृतेन।।
त्वया वयं बहु-धन्या।
विवृता त्वमसि सुकन्या।।आ।।

सर्वदा बिना ढके रत्न का मूल्य जैसे प्रकाश में आता है, वैसे ही बिना ढके मुख का मूल्य प्रकट होता है। तुझसे हम-सब का भड़ा भाग्य जगा है। तू परदे में न छिपी हुई सुन्दर कन्या है।।आ।।

तोयेनेव सदा वदनेन।
अन्तः किमिति भाति विवृतेन।।
त्वया वयं बहु-धन्या।
विवृता त्वमसि सुकन्या।।इ।।

जैसे बिना ढके पानी में भीतर क्या है, यह स्पष्ट जान पड़ता है। वैसे ही बिना ढके मुख से (मन के) भीतर क्या है, यह प्रकट हो जाता है। तुझसे हम सबका बड़ा भाग्य जगा है। तू परदे में न छिपी हुई सुन्दर कन्या है।।इ।।

आदर्शेनेव हि वदनेन।
भावः फलति सदा वदनेन।।
त्वया वयं बहु-धन्या।
विवृता त्वमसि सुकन्या।।ई।।

जैसे खुले दर्पण में छाँई दिखाई पड़ती है, वैसे ही मन का भाव सदा खुले मुंह पर प्रतिबिंबित होता है। तुझसे हम सबका बड़ा भाग्य जगा है।

तू परदे में न छिपी हुई सुन्दर कन्या है।।ई।।

सर्वः संतुष्यति वदनेन।
प्रियवचनं श्रुत्वा विवृतेन।।
त्वया वयं बहु-धन्या।
विवृता त्वमसि सुकन्या।।उ।।

सब कोई खुले-मुख से प्रिय वचन सुनकर संतुष्ट होते है। तुझसे हम सबका बड़ा भाग्य जगा है। तू परदे में न छिपी हुई सुन्दर कन्या है।।उ।।

गुरुजन इह नन्दति वदनेन।
विनयशोभिना किल विवृतेन।।
त्वया वयं बहु-धन्या।
विवृता त्वमसि सुकन्या।।ऊ।।

बड़े लोग विनय से शोभित, बिना ढके मुख से ही यहां प्रसन्न होते है। तुझसे हम सबका बड़ा भाग्य जगा है। तू परदे में न छिपी हुई सुन्दर कन्या है।।ऊ।।

संवृतेन भाव्यं दोषेण।
गुणेन भवितव्यं विवृतेन।।
त्वया वयं बहु-धन्या।
विवृता त्वमसि सुकन्या।।ऋ।।

दोष को ढका ही रहना चाहिए। गुण को खुला हुआ रहना चाहिए। तुझसे हम सबका बड़ा भाग्य जगा है। तू परदे में न छिपी हुई सुन्दर कन्या है।।ऋ।।

युक्ता त्वं रूपेण गुणेन।
मुखेन शोभा ते विवृतेन।
त्वया वयं बहु-धन्या।
विवृता त्वमसि सुकन्या।।ॠ।।

तू रूप से युक्त है, तू गुण से युक्त है। तेरी शोभा खुले हुए मुख से ही है। तुझसे हम सब का बड़ा भाग्य जगा है। तू परदे में न छिपी हुई सुन्दर कन्या है।।ॠ।।

एवं तां स्वसुतेऽनुरागपरमां गोपां वधूं सर्वतो
भावैर्भक्तिपरां गुरुष्वथ जनेष्वन्येषु मैत्रीपराम्।
सौभाग्यस्य समृद्धिसौख्यसहितस्याशीर्भिराह्लादिताम्
आघ्रायानतमूर्धनि प्रमुमुदे शाक्येषु शाक्याधिपः।।29।।

इस प्रकार अपने पुत्र के प्रेम में पगी हुई सब भाव से गुरुजनों की भक्ति में रमी हुई, तथा अन्य लोगों में मैत्री-भावना से लगी हुई, अपनी पुत्र-वधू गोपा के सुख-सम्पत्ति सहित सौभाग्य के आशीर्वाद द्वारा आनन्दित कर, उसे माथे से चूम कर, शाक्यों के बीच शाक्य राज अत्यन्त आनन्दित हुए।।29।।

यादृक्सर्वगुणान्वितः स भगवान्छ्रीबुद्धबीजांकुरम्
तादृक्सर्वगुणान्विता भगवती सासीत्कृपाधीघना
अन्योन्योपमसाहचर्यमभवद् यूनोस्तयोरुज्जवलं
तद् दृष्ट्वा रतिकामयोरपि मनो जातं तयोरुत्सुकम्।।30।।

श्रीबुद्धबीज के अंकुरभूत भगवान (बोधिसत्त्व) जिस प्रकार सब गुणों से युक्त थे, उसी प्रकार करुणा तथा प्रज्ञा की मूर्ति भगवती गोपा भी सब गुणों से युक्त थीं। उन जवानों के उज्जवल सख्यभाव का उपमान उन्हीं का सख्य भाव था। उसे देखकर रति और काम के मन में भी उनके प्रति उत्सुकता जाग उठी थी।।30।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
गोपापरिग्रहाभिधानस्
तृतीयः प्रसंगः।

चतुर्थः प्रसंगः

निमित्तदर्शनम्

गोपां प्राप्य यशोधरां स गुणवान् ख्यातिं गणे लब्धवान्
साहाय्यं स्वपितुर्गणस्य बहुधा कृत्येष्वथो दत्तवान्।
प्रीतः किंतु न वीक्ष्य शस्त्रपरमानन्योन्यहिंसापरान्
स्वार्थैकप्रवणान् गणानथ गृहे भिन्नान् स्वबन्धूनपि।।31।।

वे गुणवान् (बोधिसत्त्व) यशस्विनी गोपा को पाकर (शाक्य-) गण में प्रसिद्ध हो गए। (शाक्य-) गण के कार्यों में उन्होंने अपने पिता को नाना प्रकार की सहायता दी। पर एकमात्र स्वार्थ में लगे हुए, एक दूसरे की हिंसा में तत्पर, शस्त्र-परायण गणों को तथा घर में भी भेद-भाव भरे बन्धुओं को देखकर वे संतुष्ट न हुए।।31।।

आनन्दक्षण एव दुर्लभतमो लोके गृहस्थस्य हा
प्रायो याति दिवानिशं कलिपरस्यायुः क्षयं केवलम्।
क्षत्रं पापकमेव जीवति निजानन्यांश्च हत्वायुधै-
र्निर्वैरं जगदस्तु मार्ग इह कः सामाग्र्यमाप्तुं जने।।32।।

हाय! दुनिया में घर-बारी के लिए आनन्द का एक क्षण भी अत्यन्त दुर्लभ है। वह रात-दिन झगड़े-झंझट में लगा रहता है। उसकी आयु प्रायः यों ही बीत जाती है। शस्त्रों से अपने-पराये सबका हनन करके जीने वाली क्षत्रिय-जाति पापी जाति है। जगत् को वैर भाव से रहित होना चाहिए। पर इस दुनिया में एकता पाने की राह क्या है?।।32।।

इत्येवं प्रविचिन्तयन् स विमना गेहावरुद्धो भृशं
चित्तं सान्त्वयितुं विलोक्य विपिनं गन्तुं बहिः पत्तनात्।
आरूढो रथमंगनाभिरतनुर्दृष्टो ध्रुवं सत्तनुः
पौरै राजसुतो जयध्वनिपरैः सानन्दमालोकितः।।33।।

इस प्रकार सोचते हुए, घर में बंधे हुए, मन में अत्यन्त व्याकुल, वे

वन (की बहार) देखकर अपना चित्त बहलाने के ख्याल से, नगर से बाहर जाने के लिए रथ पर चढ़े। उन्हें स्त्रियों ने समझा कि ये साक्षात् अनंग (काम देव) हैं, जिन्होंने सुन्दर शरीर धारण कर लिया है। नागरिकों ने उन्हें राजपुत्र के रूप में जय-जयकार करके आनन्द के साथ देखा।।33।।

मार्गे सिक्तजले रजोविरहिते लोकाकुले प्रान्तयो
राजादेशपरैः कृतेऽपि पुरुषैर्यत्नान्मनोहारिणि।
संवेगावहवस्तुभिर्विरहितेऽप्यानन्दघोषान्तरे
जीर्णं कंचन वीक्ष्य सारथिमुवाचायं क इत्युत्सुकः।।34।।

मार्ग में जल का छिड़काव किया गया था, धूल-धक्कड़ न था। दोनों ओर लोगों की भीड़ थी। राज के आज्ञापालक पुरुषों ने उसे यत्न से मनोहर कर रखा था। उद्वेग उपजाने वाली वस्तुएं वहां नहीं थीं। (सब ओर से) आनन्द-ध्वनि हो रही थी। यह सब होते हुए भी उन्हें एक बूढ़ा दिखाई पड़ गया। उन्होंने उत्सुक होकर सारथी से पूछा कि यह कौन है?।।34।।

कुमारं प्रति सारथिः

अयमपि पुरा बद्धदृढवर्मा।
समरे जयी बभूव सुकर्मा।।
परिभूतः परमेष इदानीम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।अ।।

इसने भी पहले दृढ़ कवच पहना था, युद्ध में विजयी हुआ था। अच्छे काम किए थे। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।।अ।।

अयमपि पुरा रूपबलशाली।
सुविहितांगरागो वनमाली।।
परिभूतः परमेष इदानीम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।आ।।

यह भी पहले रूपवान् था, बलवान् था। सुन्दर अंगराग लगाता था, वन-पुष्पों की मालाएं धारण करता था। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।।आ।।

इममवलोक्य पुरा बहुसक्ताः।
आसन् पौरांगनाः प्रमत्ताः।।
परिभूतः परमेष इदानीम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।इ।।

इसे देखकर पहले नगर की स्त्रियाँ अत्यन्त आसक्त होकर मतवाली हो जाती थीं। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।।इ।।

वचनमस्य पूर्वं श्रुतवन्तः।
साधु साधु चाहुर्गुणवन्तः।।
परिभूतः परमेष इदानिम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।ई।।

पहले इसका वचन सुन गुणवान् लोग वाह-वाह करते थे। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।।ई।।

अयमपि पुरा पुपोष ज्ञातिम्।
गतः परां लोके विख्यातिम्।।
परिभूतः परमेष इदानीम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।उ।।

इसने भी पहले अपनी जाति बिरादरी को पाला-पोसा था और दुनिया में बड़ा नाम कमाया था। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।।उ।।

पूर्वमनेनार्जितमिह वित्तम्।
आराधितं सकलजनचित्तम्।।
परिभूतः परमेष इदानीम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।ऊ।।

पहले इसने यहां धन कमाया था। सब लोगों के चित्त को प्रसन्न किया था। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।।ऊ।।

रूपं बलं धनं धीर्ज्ञानम्।
पूर्वमभूदमुष्य बहु-मानम्।।
परिभूतः परमेष इदानीम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।ऋ।।

पहले इसका बहुत मान था, इसमें रूप, बल, धन, बुद्धि, ज्ञान (सब कुछ) था। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।।ऋ।।

इयं गतिः सकलस्य भवित्री।
पूर्वं वसुबलमस्य धरित्री।
परिभूतः परमेष इदानीम्।
जरालीढतनुरेष इदानीम्।।ॠ।।

सबकी यह गति होने वाली है। पहले इसमें बल-बूता था, इसकी धन-धरती थी। पर इस समय यह हार खाया हुआ है। इस समय बुढ़ापा इसकी देह चाट गई है।।ॠ।।

संविग्नो जरया निवृत्य गमनात् प्रत्यागतः स्वान् गृहान्
रुद्धस्तत्र पुनः पुरान्नृपसुतो रन्तुं वियासुर्वनम्।
वीथ्यामेव पुरस्य वीक्ष्य मनुजं रोगार्तमार्तः स्वयं
कोऽसावित्यनुयुक्तवान् निजगदे यन्त्रा विवृत्याखिलम्।।35।।

बुढ़ापे (की बात) से संविग्न हो, (बाहर) जाना छोड़कर, (वे) राजपुत्र घर लौट आए। पर वहां के घेरे से ऊब, फिर नगर से वन में जाने की इच्छा की। अपने आप में पीड़ित उन्होंने नगर वीथी में ही रोग से पीड़ित आदमी को देखकर (सारथी से) पूछा, यह कौन है? सारथि ने सब बात खोलकर उनसे कह दी।।35।।

कुमारं प्रति सारथिः

तपति तनुरस्य मनो व्याकुलत्वमेति।
यातं सुखमस्य चायं वेदनामुपैति।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।अ।।

इसका शरीर जल रहा है। मन व्याकुल हो रहा है। इसका सुख चला गया है। इसे पीड़ा हो रही है। यहाँ यह भोग से वंचित है। इसे रोग सता

रहा है।।अ।।

वातेन श्वसिति परं निर्वृतिं न याति।
अशनं न भाति चैनं पानं नापि भाति।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।आ।।

यह हवा में सांस तो लेता है, पर इसे आराम नहीं मिल रहा है। न इसे खाना सुहाता है और न पीना। यहां यह भोग से वंचित है। इसे रोग सता रहा है।।आ।।

पश्यन्नपि लोकानयं पश्यति न किंचित्।
शून्या दृष्टिरस्य दृश्यं स्फुरति न किचिंत्।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।इ।।

यह लोगों की ओर निहारता है, पर इसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। इसकी निगाह सूनी है। दृश्य की झलक इसे नहीं मिलती है। यहाँ यह भोग से वंचित है। इसे रोग सता रहा है।।इ।।

वेपथुर्वपुषि धैर्यं मानसं जहाति।
स्थातुमसमर्थो ग्रीवामपि न दधाति।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।ई।।

इसकी देह में कंप कंपी है, मन धीरता छोड़ रहा है। इससे खड़ा हुआ नहीं जाता। यह गर्दन भी नहीं संभाल पा रहा है। यहाँ यह भोग से वंचित है। इसे रोग सता रहा है।।ई।।

करुणं विरौति पीडयाश्रुमुख आह।
अम्ब हा जनक देव पाहि पाहि हा! हा!।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।उ।।

यह करुण-क्रन्दन कर रहा है, आंसू भरे मुंह से, यह पीड़ा से बोल रहा है हाय मां, हाय बाप, हाय भगवन्, रक्षा करो-रक्षा करो, हा, हाय। यहां यह भोग से वंचित है। इसे रोग सता रहा है।।उ।।

जीवितं शरीरे किंतु स्वास्थ्यमस्य नास्ति।
दुःखमेव दुःखमेव दुःखमेव चास्ति।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।ऊ।।

इसके शरीर में जीवन है। पर इसमें आरोग्य नहीं है। इसके केवल दुःख है, केवल दुःख। केवल दुःख है। यहां पर यह भोग से वंचित है। इसे रोग सता रहा है।।ऊ।।

दोषधातुमलमस्य काये क्षोभमेति।
भेषजं तदर्थमाप्तुं भिषगमुपैति।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।ऋ।।

इसके शरीर के दोष, धातु तथा मल कुपित हो गए हैं। इनकी दवा-दारु पाने के लिए यह वैद्य के पास जा रहा है। यहाँ यह भोग से वंचित है। इसे रोग सता रहा है।।ऋ।।

क्षुब्धे दोषगणे दशा सेयं सकलस्य।
दोषगणः क्षुब्धश्चास्य समतां निरस्य।।
वंचित इह खलु भोगात्।
एष विषीदति रोगात्।।ॠ।।

दोष-समूह जब कुपित होते हैं तब सबका यही हाल होता है। इसके दोष-समूह कुपित हो उठे हैं, वे समता छोड़ चुके हैं। यह यहाँ भोग से वंचित है। इसे रोग सता रहा है।।ॠ।।

संविग्नः सुतरां रुजा परिगतं दृष्ट्वा जनं पीडितं
स्वस्थात्मापि चिराय चातुरमिवादर्शत् स कायं निजम्।
व्यावृत्तो गमनाद् गृहानुपगतः श्रीबुद्धबीजांकुरः
सम्यक्प्राप्तसुखोऽपि दुःखमतुलं चित्तेऽन्वविन्दद् भृशम्।।36।।

रोग से व्यापृत उस पीड़ित आदमी को देखकर (बोधिसत्त्व) और भी अधिक उद्विग्न हो गए। वे शरीर के स्वस्थ थे; तो भी उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानों उनका शरीर चिरकाल से रोगी हो। श्रीबुद्ध-बीज के अंकुरभूत वे आगे न जाकर घर लौट आए। उन्हें अच्छी तरह सब सुख प्राप्त थे, तो भी मन में उन्हें अत्यन्त अपरिमित दुःख हुआ।।36।।

संवेगात् परमातुरः स्वहृदये दृष्ट्वा जगत् सामयं
नित्यं तिष्ठति खिन्न-खिन्नहृदयो लोकेषु दृष्ट्वा कलिम्।
अप्राप्तो हृदये सुखस्य लवमप्यन्तःपुरेष्वात्मवान्
निर्यातो हृदयं निजं रमयितुं दृष्ट्वा वनं पत्तनात्।।37।।

जगत् को रोगमय देखकर अपने हृदय में उद्वेग के कारण वे अत्यन्त रोगी हो गए। लोगों का झगड़ा देखकर वे सर्वदा हृदय में अत्यन्त खिन्न रहने लगे। स्त्रियों के महलों में उन आत्मवान (स्वाभिमान, खुद्दारी वाले) को नाम मात्र भी हृदय में सुख न मिला। इसलिए अपने हृदय को (वन की बहार) देखकर बहलाने के लिए नगर से निकल पड़े।।37।।

वीथ्यामेव परन्तु दृष्टिरपतन्निर्हार्यमाणे जने
निश्चेष्टे समलंकृते तदपरै रोरूयमाणैर्वृते।
कोऽसावित्यनुयुक्तवान् नृपसुतो यन्तारमुक्तो भृशं
स प्राहैनमवेक्ष्य चित्तविकलं संवेगवृद्ध्यै वचः।।38।।

परन्तु (नगर की) वीथी में ही उनकी दृष्टि एक आदमी पर पड़ी, जिसे लोग उठाए ले जा रहे थे, जो हिलता-डुलता न था, जो सजा हुआ था, दूसरे लोग उसे घेरे हुए थे और बहुत-बहुत रो-पीट रहे थे। राजपुत्र ने सारथि से पूछा कि यह कौन है। उसने यह सुनकर, उन्हें चित्त में अत्यन्त व्याकुल देखकर, उनके उद्वेग को और भी अधिक बढ़ाने के लिए यह बात कही।।38।।

सारथिः

जातो जातो जन इह नश्यति।
अन्ते कोऽपि न चैनं पश्यति।।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।अ।।

उत्पन्न हो-होकर आदमी यहां नष्ट हो जाता है। अन्त में इसे कोई नहीं देख पाता। आयु की अवधि पूरी हो जाती है। इस लोक में सबका अन्त यों ही होता है।।अ।।

खादति पिबति स्वपित्यवबुध्यति।
अन्ते किन्तु गमनमिह सिध्यति।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।आ।।

यहां (आदमी) खाता है, पीता है, सोता है, जागता है। परन्तु अन्त में यहां से जाना पड़ता है। आयु की अवधि पूरी हो जाती है। इस लोक में सबका अंत यों ही होता है।।आ।।

क्रीडति हसति वधूं परिचरति।
परमन्ते लोकाद् अपसरति।।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।इ।।

(यहां आदमी) हंसता है, खेलता है, बीबी (पत्नी) की गुलामी करता है, पर अन्त में इस दुनिया से दूर चला जाता है। आयु की अवधि पूरी हो जाती है। इस लोक में सब का अन्त यों ही होता है।।इ।।

अर्जति रक्षति सुखमनुभवति।
च्यवतेऽन्ते परमत्र न भवति।।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।ई।।

(आदमी यहाँ) कमाता है, बचाता है, सुख भोगता है पर अन्त में उसकी देह गिर जाती है, यहाँ नहीं रह जाता है। आयु की अवधि पूरी हो जाती है। इस लोक में सबका अन्त यों ही होता है।।ई।।

युध्यति जयति यजति सुखमृच्छति।
अन्ते पुनरभावमुपगच्छति।।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।उ।।

(यहाँ आदमी) युद्ध करता है, विजय पाता है, यज्ञ करता है, सुख पाता है। पर अन्त में उसका अभाव हो जाता है। आयु की अवधि पूरी हो जाती है। इस लोक में सबका अन्त यों ही होता है।।उ।।

कुतोऽपि जातः कुतोऽपि याति।
यान्तं लोकात् कोऽपि न पाति।।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।ऊ।।

(यहाँ आदमी) कहीं से उत्पन्न होता है, कहीं चला जाता है। इह लोक से चले जाने वाले को कोई बचा नहीं पाता। आयु की अवधि पूरी हो जाती है। इस लोक में सबका अंत यों ही होता है।।ऊ।।

अजरः कोऽपि न भूमौ विचरति।
अमरो नेह कोऽपि भुवि विहरति।।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।ऋ।।

धरती पर कोई भी अजर (ऐसा व्यक्ति जिसे बुढ़ापा न हुआ हो) होकर नहीं विचरता, न इस धरती पर कोई अमर होकर ही रहता है। आयु की अवधि पूरी हो जाती है। इस लोक में सबका अन्त यों ही होता है।।ऋ।।

विगतजीवमनले वपुरस्यति।
जनो जनस्यैवं वरिवस्यति।।
पूर्यत्यायुर्मानम्।
सकलस्यैतादृशं जायते लोकेऽस्मिन्नवसानम्।।ॠ।।

आदमी आदमी के जीव-हीन शरीर को आग में डाल देता है। ऐसे ही (अन्त में उसकी) पूजा करता है। आयु की अवधि पूरी हो जाती है। इस लोक में सबका अन्त यों ही होता है।।ॠ।।

संविग्नोऽपि पुरा विलोक्य जगतीमन्योन्यहिंसापरां
नित्यं नित्यमनुव्रतां कलिमलं सामग्र्यभावाच्च्युताम्
रागद्वेषमयैर्गणैः परिवृतां कारुण्यहीनां शठाम्
एनां वीक्ष्य परं क्षणस्थितिमतीमद्योदवैक्षीद् भृशम्।।39।।

इस दुनिया में, एक-दूसरे की हिंसा करने में लगी हुई दिन-प्रतिदिन झगड़ों के कूड़े-कचड़े में अनुराग करने वाली, एकता के भाव हीन, राग-द्वेष से भरे गणों से घिरी हुई, करुणा रहित, तथा शठ देखकर बोधिसत्त्व पहले से ही उद्विग्न थे, पर आज इसे क्षणिक देखकर वे अत्यन्त उद्विग्न हो

गए।।39।।

किं लोके कलिरेव जीवनमथो सम्भाव्यमैक्यं क्वचिद्
हिंसैवात्र विधिर्भवेदथ जने कारुण्यभावोऽपि किम्।
जीर्णं मृत्युपरायणं जगदिदं मायैव यद् यौवनं
शून्यं सर्वमिदं विभाव्य पुनरप्यागाद् गृहानेव सः।।40।।

क्या झगड़ा ही दुनिया का जीवन है? अथवा क्या कहीं मेल भी संभव है? हिंसा क्या लोगों का कानून है? अथवा क्या लोक में दयाभाव भी हो सकता है? यह दुनिया जीर्ण है, मृत्यु की ओर जा रही है। जो यौवन (दिखाई देता) है वह तो माया ही है। यह सब कुछ शून्य है। यों सोचकर वे बोधिसत्त्व फिर घर आ गए।।40।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
निमित्तदर्शनाभिधागश्
चतुर्थः प्रसंगः।।

पंचमः प्रसंगः

वन-विहारः

यस्मिञ्छाक्यगणाभिवांछितमभूज्जन्मक्षणे रोपितं
पश्चाच्चांकुरितं किशोरवयसि प्राप्ते कुमारोत्तमे।
वृद्ध्यैवं वयसः सुपत्रितमथ प्राप्ते नवे यौवने
सम्यक्पुष्पितमाः किमेतदधुना नोज्जृम्भते सत्फलैः।।41।।

जन्म के मुहूर्त में ही, जिनमें शाक्यगण का मनोरथ (-बीज) बो दिया गया था, बाद में जिन उत्तम कुमार के किशोरावस्था पाने पर जो अंकुरित हो गया था, इस प्रकार आयु की वृद्धि के साथ जो पल्लवित हो गया था और नव-यौवन पाने पर जो भली-भांति फूल गया था, ओह! यह क्या? आज वह उत्तम फलों से समृद्ध नहीं हो रहा है।।41।।

दातुं दानमथो विजेतुमवनिं हित्वा विरक्तिं गतो
यास्यत्येष न चक्रवर्तिपदवीं किं सर्वसिद्धिप्रदः।
त्यक्त्वा शाक्यगणं विहाय नृपतिं भार्यां तथा गौतमीं
गत्वारण्यमसौ भविष्यति जने किं भैक्ष्यचर्यापरः।।42।।

दान-देना तथा दिग्-विजय करना छोड़, वैराग्य-भाव को प्राप्त, यह सर्व सिद्धियों का दाता कुमार क्या चक्रवति-पद नहीं प्राप्त करेगा? क्या यह शाक्यगण का राजा (शुद्धोदन) का, पत्नी का तथा गौतमी का त्याग कर वन में जाकर लोगों के बीच भिक्षा से विचरने वाला होगा?।।42।।

एवं चिन्तयतो गणस्य सनृपस्याहर्निशं चिन्तया
संरुद्धो विषयोपभोगपरमैः प्रायेण नारीजनैः।
किं चित्त् स्वास्थ्यमवाप्तुमेष निरगाद यन्त्रा समं पत्तनाद्
द्रष्टुं पक्षिमृगोपजुष्टविपिनं राजाज्ञया श्रीघनः।।43।।

(शुद्धोदन) राजा के सहित शाक्यगण दिन-रात जब इस प्रकार सोच रहा था, तब विषयभोग-परायण प्रायः स्त्रीजनों के बंधन में बंधे, शोभामय

कुमार, कुछ राजा की आज्ञा से, खग-मृग से सेवित वन को देखने के निमित्त सारथि के साथ नगर से निकले।।43।।

दृष्ट्वा तत्र यतिं प्रसन्नकरणं निश्चिन्तवीतारतिं
कोऽसावित्यनुयुज्य, धर्मपरमोऽसावित्यविन्दद् वचः।
शान्तं तं समुपेत्य नम्रवचसा राजात्मजः पृष्टवान्
केन त्वं विहरस्यतीव भगवन्नार्तेष्वनार्तः सुखी।।44।।

वहाँ उन्होंने निर्मल इन्द्रियों वाला चिन्ता तथा अरति (शोक) से विहीन एक यति को देखकर (सारथी से) पूछा कि यह कौन है? उन्हें उत्तर मिला कि यह एक धर्मवान् है। (तब) राजपुत्र ने उन शान्त (यति) के पास जाकर, नम्र वचन से पूछा, भगवन्? (इस) पीड़ित लोगों के बीच आप पीड़ा रहित हो अत्यन्त सुख से विहार कर रहे हैं, इसका कारण क्या है?।।44।।

श्रुत्वेदं वचनं यतिर्यमवतां लोके नृणामुत्तमं
ज्ञात्वेमं जगदेकतारणपरं कंदर्पदर्पोन्मथम्।
दृष्ट्वेदं जगदव्यवस्थितमथो रौक्ष्यानुरागोद्धतं
संविग्नं व्युपशान्तये हृदि परं शाम्यन्तमेनं जगौ।।45।।

लोक में नियम से चलने वाले मनुष्यों में उत्तम उनके इस वचन को सुनकर, उन्हें काम के मद को मथ डालने वाला संसार का अद्वितीय उद्धारक जान, तथा राग-द्वेष से उद्धत इस जगत को अव्यवस्थित देखने से हृदय में अत्यन्त पीड़ित और उद्विग्न उनके (मन को) शान्ति देने के लिये यति ने उनसे कहा।।45।।

यतिः

अनिकेतनो भैक्ष्यमतिसुलभं यथासुखं विहरामि।
बद्धो नास्मि कयापि केनचिद् स्वच्छन्दं विचरामि।।
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्।।अ।।

मेरा घर-बार नहीं है, भिक्षा मुझे बड़ी सरलता से मिल जाती है, जैसे अच्छा लगता है वैसे रहता हूं। किसी स्त्री या पुरुष के बंधन में नहीं हूं। जहां चाहता हूं वहां विचरण करता हूं। चित्त अब बंधन-हीन है, अब

कामिनी-कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त है।।अ।।

पशुपालनमिह लोकः कुरुते हन्ति पशून् यजनाय।
पशुभिर्मम न कार्यमिह किंचिद् ब्रीहियवं धर्माय।।
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्।।आ।।

यहाँ लोग पशु पालते हैं, यज्ञ में उन पशुओं की बली दे देते हैं। पशुओं से मेरा कुछ काम नहीं। धर्म के लिए जौ और चावल (पर्याप्त) हैं। चित्त अब बन्धनहीन है, अब कामिनी-कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त है।।आ।।

लोको गवाव्यजं परिपुष्यति भोजनाय घातयितुम्।
शाकाहारेणैव परं दिनमिह शक्यं यापयितुम्।।
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्।।इ।।

भोजन के लिए मार डालने के लिए लोग गाय-भेड़ बकरी पालते-पोसते हैं। पर दिन तो शाकाहार से भी बिताया जा सकता है। चित्त अब बंधन हीन है, अब कामिनी-कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त है।।इ।।

मनुजो मनुजं हन्ति चिन्तयति धर्मायेदं युद्धम्।
हिंसायामिह धर्मलवो नास्तीति मया प्रतिबुद्धम्।।
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्।।ई।।

मनुष्य मनुष्य की हत्या करता है और समझता है वह युद्ध धर्म के लिए कर रहा है। हिंसा में धर्म का लेश भी नहीं है, यह मैंने समझ लिया है। चित्त अब बंधन हीन है, अब कामिनी-कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त है।।ई।।

धर्मकैतवेनात्र वर्तते द्वन्द्वं किल भोगार्थम्।
अन्नमात्रया सहितं वासोयुगं ह्यलं कायार्थम्।।
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्।।उ।।

धर्म के बहाने से, भोग के निमित्त आज लड़ाई-झगड़ा हो रहा है, पर शरीर के लिए थोड़े अन्न के साथ कपड़े का जोड़ा पर्याप्त है। चित्त अब

बंधन हीन है, अब कामिनि-कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त है।।उ।।

शयनासनमेकं पर्याप्तं नृपतेरपि निद्रार्थम्।
शेते तृणसंस्तरे यतिः सुखमेव सौख्यरक्षार्थम्।।
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्।।ऊ।।

राजा के सोने के लिए भी एक ही शयनासन (रहने के लिए स्थान, कुटी) पर्याप्त है। यति तो तृण के बिछौने पर स्वास्थ्य रक्षा के लिए सुख से नीद ले लेता है। चित्त अब बंधनहीन है, अब कामिनी-कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त है।।ऊ।।

भोजनवसनशयनशरणं सकलस्यैवात्राभिष्टम्।
किं त्वेकस्मिंश्चितं वित्तमिह जनयति सकलमनिष्टम्।।
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्।।ऋ।।

यहाँ सभी के लिए खाना-कपड़ा, खटिया-कुटिया चाहिए। पर किसी एक ही के पास एकत्रित हुआ धन सब प्रकार के अनर्थ करता है। चित्त अब बन्धन-हीन है, अब कामिनी-कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त है।।ऋ।।

एकस्यापि कृते नालं निखिलं भुवि यत्स्त्रीवित्तम्।
संविभागरतिमन्तरेण शममेति कदापि न चित्तम्।।
बन्धनहीनमिदानीम्।
चित्तं वसुभामिनीलौल्यविरहेण विमुक्तमिदानीम्।।ॠ।।

धरती पर जितनी स्त्रियाँ तथा जितना धन है, वह एक के लिए भी पर्याप्त नहीं है। बाँट-चूटकर भोगने के प्रति रुचि के बिना कभी भी चित्त को शान्ति नहीं मिल सकती? चित्त अब बंधन हीन है, अब कामिनी-कांचन की लालसा न रहने से विमुक्त है।।ॠ।।

नैष्क्रम्याभिमुखं[1] निशम्य वचनं साधोः शमेनान्वितं
किंचित् स्वस्थमभून्मनोऽस्य विपिने पूर्वं ममत्वातुरम्।

---

1. 'नैष्काम्य' पाठ उपयुक्त नहीं। यह मुद्रण की त्रुटि है। बौद्ध सन्दर्भ में 'नैष्क्रम्य' ही उपयुक्त है।

ध्यायन्नर्थममुं विहृत्य सुचिरं तस्मान्निवृत्तो वनाद्
गायन्तीं पथि शुश्रुवान् नृपसुतः कन्यां कृशागौतमीम्।।46।।

वन में साधु के निष्क्रमण (प्रव्रज्या के लिये घर से बाहर निकालना) के अनुकूल तथा शान्ति से युक्त वचन को सुनकर उसका चित्त, पहले जो ममता के कारण व्याकुल था, वह कुछ स्वस्थ हुआ। उसी बात को सोचते हुए, बड़ी देर तक वन-विहार कर, वहां से लौटते समय मार्ग में राजपुत्र को गाती हुई कृशा-गौतमी का गीत सुन पड़ा।।46।।

कृशा गौतमी

रोम-रोम-पुलकितं तृप्तिरन्यैव हि कापि शरीरे।
शान्तिः समुन्मिषति सुतरां काचिन्मम मनस्यधीरे।।
सा निर्वृतात्र कान्ता
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता।।अ।।

मेरा रोम-रोम पुलकित होता रहता है, शरीर में कोई अपूर्व तृप्ति हो रही है। मेरे अधीर मन में किसी ओर ही शान्ति का उदय हो रहा है। वह स्त्री यहाँ निर्वृत है, जिसका भाग्यविधाता पति ऐसा सुन्दर है।।अ।।

दुर्भावो हृदयाद् व्यपैति सद्भावो हृदयमुपैति।
विमला स्नेहसमेता काचिच्चेतोवृत्तिरुदेति।।
सा निर्वृतात्र कान्ता
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता।।आ।।

हृदय से दुर्भाव दूर हो रहा है, हृदय में सद्भाव समा रहा है। निर्मल स्नेहभरी कोई चित्तवृत्ति उत्पन्न हो रही है। वह स्त्री यहाँ निर्वृत्त है, जिसका भाग्यविधाता पति ऐसा सुन्दर है।।आ।।

नयने हर्षसमेते हसतो हसति च वदनमुदारम्।
अन्तःकरणं हसति विहसति प्रहसति वारं वारम्।।
सा निर्वृतात्र कान्ता
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता।।इ।।

हर्ष के साथ आंखे हंस रही है, बदन खूब हंस रहा है। चित्त बार-बार हँस रहा है, विहँस रहा है, उत्तम रीति से हँस रहा है। वह स्त्री यहां निर्वृत है, जिसका भाग्यविधाता पति ऐसा सुन्दर है।।इ।।

वक्षःस्थलं स्फुरत्यानन्दः स्फरति मानसे धीरम्।
किमप्यपूर्वमननुभूतं सुखमनुबोभोति शरीरम्।
सा निर्वृतात्र कान्ता
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता।।ई।।

छाती फड़क रही है। मन में धीरे-धीरे आनन्द व्याप्त हो रहा है। पहले कभी अनुभव में न आने वाले किसी अपूर्व सुख का शरीर को बार-बार अनुभव हो रहा है। वह स्त्री यहां निर्वृत है, जिसका भाग्यविधाता पति ऐसा सुन्दर है।।ई।।

इन्द्रियाणि मुदितानि बहून्यूदितानि पूर्वसुकृतानि।
धन्यधन्यमिदमहो दिनं सफलानि कायनयनानि।।
सा निर्वृतात्र कान्ता
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता।।उ।।

इन्द्रियाँ मुदित हो रही हैं। पहले के पुण्यों का (आज) उदय हुआ है। अहो! यह दिन धन्य है, धन्य है। शरीर तथा नेत्र सफल हो गए। वह स्त्री यहाँ निर्वृत है, जिसका भाग्यविधाता पति ऐसा सुन्दर है।।उ।।

लोचनयुगलमेव हि वपुषि न लोचनमयं शरीरम्।
दर्शनेन प्रीतिः समुदेति न तृप्यति चित्तमधीरम्।।
सा निर्वृतात्र कान्ता
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता।।ऊ।।

शरीर में आंखों का जोड़ा ही है। आंखे-ही आंखे शरीर में क्यों न हुई। देखने से प्रीति उपज रही है, चित्त चुप नहीं है, उसे तृप्ति नहीं हो रही है। वह स्त्री यहाँ निर्वृत्त है, जिसका भाग्यविधाता पति ऐसा सुन्दर है।।ऊ।।

एतौ करौ वन्दितुं यातः पुनः पुनर्मूर्धानम्।
मूर्धा नमति सकृद् द्विस् त्रिर्बहुकृत्वः कर्तुं मानम्।।
सा निर्वृतात्र कान्ता
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता।।ऋ।।

ये दोनों हाथ वन्दना करने के लिए बार-बार माथे पर जा रहे हैं। माथा संमान करने के लिए एक बार, दो बार, तीन बार, बहुत-बहुत बार

झुक रहा है। वह स्त्री यहाँ निर्वृत हैं, जिसका भाग्य विधाता पति ऐसा सुन्दर है।।ऋ।।

अत्र निर्वृत्तः पिता स खलु निर्वृता ध्रुवं सा माता।
अयं ययोरंगात् संजातः पुत्रो मुदमाधाता।।
सा निर्वृतात्र कान्ता
कान्तो यस्येदृशो भवति कमनीयो भाग्यविधाता।।ॠ।।

निश्चय से यहाँ वह पिता निर्वृत है, निश्चय से यहाँ वह माता निर्वृत है, जिनके अंग से यह आनन्ददायी पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह स्त्री यहां निर्वृत्त है, जिसका भाग्यविधाता पति ऐसा सुन्दर है।।ॠ।।

श्रुत्वा निर्वृतमुत्तमं पदमयं कन्यामुखान्निर्वृतम्
तस्यै हारमुपायनं विसृजति स्मामुक्तमात्मप्रियम्।
आगत्याथ गृहानभून्न विमना नैवोन्मनाः पूर्ववत्
स्थैर्यं चेतसि संनिधाय नृपतिं गत्वा जगौ वीर्यवान्।।47।।

कन्या के मुख से उत्तम निर्वृत पद को सुनकर वे निर्वृत हुए। उसे अपना पहना हुआ प्रिय हार उपहार में भेजा। फिर घर लौटकर पहले की भांति उन्हें न तो चित्त में सूनापन लगा, न व्याकुलता ही लगी। चित्त को स्थिर कर वे वीर्यवान् राजा के पास गए और बोले।।47।।

कुमारः

क्षण आयास्यति यदा न लोकेऽस्मिंस्त्वं तात भविष्यसि।
न भविष्याम्यहमपि वद किं मयका नरनाथ करिष्यसि।।
न मनो मे रतिमेति।
इदमनित्यमध्रुवं शून्यमिति पश्यद् विरतिमुपैति।।अ।।

हे तात, क्षण आएगा, जब इस लोक में तुम न विराजते रहोगे। मैं भी न रहूंगा। राजन्, बोलो मुझसे तुम क्या करोगे। मेरा मन नहीं रम रहा है, यह सब अनित्य है, अध्रुव है, शून्य है, यह देख वह विरति की ओर जा रहा है।।अ।।

अजरमिदं न, सदातुरमेतं क्षणभंगुरं शरीरम्।
जगत् कलिमलं वीक्ष्य मदीयं चित्तं जातमधीरम्।।
न मनो मे रतिमेति।
इदमनित्यमध्रुवं शून्यमिति पश्यद् विरतिमुपैति।।आ।।

यह शरीर अजर नहीं है। यह शरीर नित्य रोगी तथा क्षणभर में टूट जाने वाला है। जगत कलह का कूड़ा-कचरा है। यह देख मेरा चित्त धैर्य खो बैठा है। मेरा मन नहीं रम रहा है। यह सब अनित्य है, अध्रुव है, शून्य है, यह देख वह विरति की ओर जा रहा है।।आ।।

अद्य न यदि श्वस्तने भविष्यति विरहो मृत्युवशेन।
अलं क्षणस्थितिकेन तात विषयामिषमद्यरसेन।।
न मनो मे रतिमेति।
इदमनित्यमध्रुवं शून्यमिति पश्यद् विरतिमुपैति।।इ।।

आज नहीं तो कल मृत्यु के कारण बिछुड़ना होगा। हे तात, क्षणस्थायी विषय रस, मांसरस तथा मद्य रस मुझे नहीं चाहिए। मेरा मन नहीं रम रहा है। यह सब अनित्य है, अध्रुव है, शून्य है, यह देख वह विरति की ओर जा रहा है।।इ।।

रोगो नेष्यति यमक्षयं युद्धे वा नंक्ष्यति कायः।
हा लप्स्यते न किंचिल्लोके कोऽपि च नात्र सहायः।।
न मनो मे रतिमेति।
इदमनित्यमध्रुवं शून्यमिति पश्यद् विरतिमुपैति।।ई।।

रोग यम के घर भेज देगा। अथवा युद्ध में शरीर नष्ट हो जाएगा। इस दुनियां में कुछ भी हाथ न लगेगा। यहाँ कोई भी सहायक नहीं है। मेरा मन नहीं रम रहा है, यह सब अनित्य है, अध्रुव है, शून्य है, यह देख वह विरति की ओर जा रहा है।।ई।।

यौवनमिदं गमिष्यति शीघ्रं भविष्यामि बलहीनः।
करिष्यामि किं तात तदा जरया परिभूतो दीनः।।
न मनो मे रतिमेति।
इदमनित्यमध्रुवं शून्यमिति पश्यद् विरतिमुपैति।।उ।।

यह जवानी शीघ्र ही जाने वाली है, मैं निर्बल हो जाऊंगा। हे तात, जरा से हार खाया हुआ, दीन-दयनीय मैं तब क्या करूंगा। मेरा मन नहीं रम रहा है। यह सब अनित्य है, अध्रुव है, शून्य है यह देख वह विरति की ओर जा रहा है।।उ।।

का धर्मार्थकथा श्वसितुं न शरीरं यदा समर्थम्।
धर्मार्थयोरयं मम कालः करवाणि स्वमनोऽर्थम्।।

न मनो मे रतिमेति।
इदमनित्यमध्रुवं शून्यमिति पश्यद् विरतिमुपैति।।ऊ।।

जब शरीर में सांस लेने का भी बल नहीं रहेगा, तब धर्म और अर्थ की चर्चा ही क्या? मेरे लिए धर्म और अर्थ कमाने का यह समय है। मुझे अपना मनोरथ पूरा करने दीजिए। मेरा मन नहीं रम रहा है। यह सब अनित्य है, अध्रुव है, शून्य है, यह देख वह विरति की ओर जा रहा है।।ऊ।।

अर्थेन तु बहुकलिना हिंसापरेण नास्ति ममार्थः।
स्वार्थः शमप्रधानो धर्मः शमकामोऽस्मि शमार्थः।।
न मनो मे रतिमेति।
इदमनित्यमध्रुवं शून्यमिति पश्यद् विरतिमुपैति।।ऋ।।

बहुत झगड़े वाले, हिंसा-परायण अर्थ से मेरा प्रयोजन नहीं है। शान्ति प्रधान धर्म ही मेरा स्वार्थ है, मैं शान्तिकामी हूं। शान्ति ही पाना मेरा प्रयोजन है। मेरा मन रम नहीं रहा है। यह सब अनित्य है, अध्रुव हैं, यह देख वह विरति की ओर जा रहा हैं।।ऋ।।

परिविव्रजिषति चित्तमिदं धर्माय तपोवनमेतुम्।
अनुजानीहि धर्मचरणार्थं स्मरसैन्यानि विजेतुम्।।
न मनो मे रतिमेति।
इदमनित्यमध्रुवं शून्यमिति पश्यद् विरतिमुपैति।।ॠ।।

यह मेरा चित्त तपोवन में जाने के लिए बार-बार छोड़ना चाहता है। मार सेना पर विजय पाने के लिए धर्माचरण करने की मुझे अनुमति दीजिए। मेरा मन नहीं रम रहा है। यह सब अनित्य है, अध्रुव है, शून्य है, यह देख वह विरति की ओर जा रहा है।।ॠ।।

सिद्धार्थस्य वचो निशम्य नृपतिर्वाष्पाम्बुपूर्णेक्षणो
धर्मे तस्य मतिं विलोक्य सुदृढां संचिन्त्य दुःखं वने।
पुत्रस्नेहममत्वपूर्णहृदयो रोद्धुं गृहेष्वात्मजं
वेदार्थोपसमन्वितं गदितवान्निर्वेदशान्त्यै वचः।।48।।

सिद्धार्थ की बात सुन कर राजा की आंखें आंसुओं के जल से भर गईं। धर्म में उनकी दृढ़ भावना देखकर तथा वन में होने वाले दुख का विचार कर, पुत्र के स्नेह और ममत्व से भरे हृदय के साथ बेटे को घर

में रोकने के लिए उन्होंने वैराग्य के शमन के लिए वैदिक अभिप्राय से युक्त वचन कहा।।48।।

उक्तं सत्यमिदं त्वयात्र सकलं किचिन्न नित्यं जने
कर्तव्यं तु तथाप्यवश्यमुचितं यत्पूर्वजैरादृतम्।
कौमारेऽध्ययनं ततो नवयुवस्याप्ते वधूसंग्रहो
गार्हस्थ्ये तु कुलानुसारि चरणं धर्मार्थमन्ते तपः।।49।।

तुमने सब सच कहा है। यहां लोक में कुछ भी नित्य नहीं है। तो भी जो कुछ पूर्वजों ने जिस बात को उचित समझा है, उसे अवश्य करना चाहिए। कुमारावस्था में अध्ययन, उसके बाद नव-यौवन प्राप्त होने पर विवाह, फिर गृहस्थाश्रम में अपने कुल के अनुसार वृत्ति और अन्त में धर्म के लिए तप करना चाहिए।।49।।

नायं ते समयो वनोपगमने दोषाढ्यमेतद् वयो
भोगार्हस्य गृहान् विसृज्य विपिनाद् व्यावर्तनं गर्हितम्।
मा गाः सम्प्रति वर्तते तव बहुः कालोऽत्र कर्तुं तपो
निर्दिश्यैवममुं जगाद नृपतिर्मोदस्व गत्वा गृहान्।।50।।

यह समय तुम्हारे वन जाने का नहीं है। यह वयस (उम्र) बहुत गड़बड़ी की वयस है। भोग योग्य व्यक्ति घर छोड़ दे और वन से फिर लौटे तो उसकी निन्दा होती है। अभी मत जाओ। तुम्हारे लिए तप करने का अभी बहुत समय है। इस प्रकार समझा कर राजा बोले : महलों में जाकर मौज करो।।50।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
वनविहाराभिधानः
पंचमः प्रसंगः।।

षष्ठः प्रसंगः

अभिनिष्क्रमणम्

गंभीरं हृदि भावयामि नितरां यद्यच्छमायोचितं
कश्चिद् राजकुले मुहूर्तमपि तत्स्वप्नेऽपि नोद्वीक्षते।
राजा चापि निवृत्तिमार्गविमुखो नित्यं प्रवृत्ती रतो।
मत्वा मां शिशुमेव शास्ति विपुलक्रीडोपचारक्रमम्।।51।।

जो-जो मैं शान्ति के योग्य बात गम्भीरता से हृदय में सोचता रहता हूं, उसकी ओर क्षण भर के लिए स्वप्न में भी कोई राजकुल में ध्यान नहीं देता। राजा भी निवृत्ति-मार्ग से उदासीन रहते हैं। प्रवृत्ति (मार्ग) परायण वे मुझे बच्चा ही मान खूब खेलने-कूदने की ही हिदायत करते रहते हैं।।51।।

इत्येवं हृदये विचिन्तनपरं कृत्यं दिनान्तोचितं
संध्यावंदनभोजनादिसकलं कृत्वाथ लब्धक्षणम्।
श्रोत्रावन्दनगीतवाद्यरवभृद् रम्यं विमानं गतं
सुन्दर्यः स्मितनेत्रचारुवदनास्तं हर्षयन्त्यो जगुः।।52।।

इस प्रकार वे हृदय में सोचते हुए, दिन की समाप्ति के समय करने योग्य संध्या वंदना, भोजन आदि सब कार्यों से निपट, कुछ फुरसत पाकर, कानों को आनन्दित करने वाले गीत-वाद्यों की ध्वनि से पूर्ण सुन्दर विमान में (-प्रासाद के ऊपर के महल में) गए। वहां पर हंसती आंखों से सुहावने मुख वाली स्त्रियाँ उन्हें आनन्दित करती हुई गाने लगी।।52।।

वामलोचन्यः

त्वयि सति भवनमिदं प्रविभाति तिरस्कुरुते सुरसदनम्।
त्वमिह यत्र विहरसि वनमपि तद् भवति नगरमदशमनम्।
रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।अ।।

तुम्हारे रहते-रहते यह भवन बहुत सुहाता है, इसके आगे देव भवन का भी कोई आदर नहीं होता। तुम जहां विहार करते हो वह वन भी नगर के अभिमान को मिटाने वाला होता है। सुवर्ण के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान मर्यादा मसल डालने वाला है। पराये अवलम्ब के बिना ही आनन्द में मग्न, हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।।अ।।

बहुजनसंकुलमपि गृहमेतच्छून्य-शून्यमिव भाति।
क्षणमपि तवादर्शने चेतो विरहरुजामुपयाति।
रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।आ।।

क्षण भर भी जब तुम नहीं दिखाई देते, तब बहुत लोगों की भीड़ वाला यह घर सूना-सूना सा लगता है। चित्त में विरह व्यथा उठने लगती है। सुवर्ण के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान-मर्यादा मसल डालने वाला है। पराए अवलंब के बिना ही आनन्द में मग्न हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।।आ।।

त्वं जीवनं त्वमेव प्राणस्त्वामेवाभिलषामः।
सदा रमस्व सहास्माभिस्त्वामेव यथोपचरामः।।
रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।इ।।

तुम जीवन हो। तुम्ही प्राण हो। तुम्हें ही हम सब चाहती हैं। हमारे साथ तुम आनन्द मनाते रहो, ताकि हम सब तुम्हारी सेवा में रहें। सुवर्ण के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान-मर्यादा मसल डालने वाला है। पराए अवलम्ब के बिना ही आनन्द में मग्न हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।।इ।।

एते शुकाः सारिका एता यदा बहिस्त्वं यासि।
क्व कुमारेति रटन्त्यविरामं यावन्नैवायासि।।
रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।ई।।

जब तुम बाहर जाते हो, तब ये शुक और ये सारिकाएं, जब तक तुम नहीं लौटते, तब तक निरंतर कुमार कहां? कुमार कहां? की रट लगाए

रहती हैं। सुवर्ण के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान-मर्यादा मसल डालने वाला है। पराए अवलंब के बिना ही आनन्द में मग्न, हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।।ई।।

पक्ष्मपातमपि निजेच्छया दर्शने दृशौ न लभेते।
यदृच्छयैवोन्मेषनिमेषौ तयोः समुपजायेते।।
रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।उ।।

(तुम्हें) देखते समय आंखें अपनी इच्छा से पलकें भी नहीं मारतीं। पलकों का खुलना मूंदना तो अपने-आप यों ही होता रहता है। सुवर्ण के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान-मर्यादा मसल डालने वाला है। पराए अवलम्ब के बिना ही आनन्द में मग्न, हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।।उ।।

वनमुपगतो विनोदयितुं त्वं चित्तं जना वदन्ति।
लताविटपखगमृगादयो किं प्रमदवने नहि सन्ति।।
रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।ऊ।।

लोग कहते हैं कि मन बहलाने के लिए तुम वन गए थे। क्या प्रमद वन में लताएँ, पेड़-पौधे, मृग-पक्षी आदि नहीं हैं? सुवर्ण के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान-मर्यादा मसल डालने वाला है। पराए अवलम्ब के बिना ही आनन्द में मग्न, हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।।ऊ।।

गच्छेर्बहिः पुनर्नेतव्या वयमपि तदा सहैव।
गन्तव्यं नान्यथा बहिः स्थातव्यं सततमिहैव।।
रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।ऋ।।

फिर जब बाहर जाना तब हम सबको भी साथ में ले जाना। नहीं तो बाहर न जाना। यहीं बराबर रहना। सुवर्ण के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान-मर्यादा मसल डालने वाला है। पराए अवलंब के बिना ही आनन्द में मग्न हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।।ऋ।।

त्वय्येवास्माकं तिष्ठन्ति सदा प्राणास्त्वं प्रेयान्।
एकाकी त्वं यासि बहिर्विधिरेष न सत्यं श्रेयान्।।
रूपे मदनमानमर्दनकरकनकगौरतनुधारी।
त्वं जय निरालंबसुखपरिचितहृदयारामविहारी।।ऋ।।

हमारे प्राण सदा तुम्हीं में लगे रहते हैं, तुम प्रियतम हो। तुम अकेले बाहर चले जाते हो, यह रंग-ढंग सचमुच बहुत अच्छा नहीं है। सुवर्ण के समान तुम्हारा गोरा शरीर है। रूप में वह कामदेव की मान-मर्यादा मसल डालने वाला है। पराये अवलंब के बिना ही आनन्द में मग्न, हृदय के उपवन में तुम विहार करते हो। तुम्हारी जय हो।।ऋ।।

श्रुत्वा प्रेमभरार्द्रवाङ्मयमिदं शाक्यांगनाभाषितं
स्नेहार्द्रः करुणामतिर्नृपसुतः किंचिद् बभूवोन्मनाः।
रौक्ष्यान्नैव जिहासति स्म स किलात्मीयानरण्योन्मुखः
प्राप्तुं किं तु महान्तमेव महते शश्वद् दधानो मनः।।53।।

शाक्य सुन्दरियों की कही गई प्रेम से भरी रसीली इन बातों को सुनकर, करुणा मन के स्नेह से पसीजे हुए राजकुमार कुछ अनमन हो गए। वे वन जाने के लिए उत्सुक थे। वे अपने को जो छोड़ जाना चाहते थे, उसका कारण ममता का अभाव न था। पर उन्हें महान की प्राप्ति करनी थी और मन सदा महान् में ही लगा रहता था।।53।।

अध्यासीनमिमं मृदुस्तरमयं पर्यंकमंगश्रिया
व्याकर्षन्तमचेतसामपि मनः कारुण्यभावाढ्यया।
नृत्यैः साभिनयैः सतूर्यमधुरोद्गीतैः पदैरंगनाः
सौहार्दादुचितोपचारविधिभिश्चेतोविनोदं व्यधुः।।54।।

स्त्रियाँ सुहृद्भाव के कारण, योग्य सत्कार विधियों के साथ अभिनयपूर्वक नाच कर, बाजों की धुन पर मीठा गाकर, इन कुमार का मनोविनोद करने लगीं, जो कोमल बिछौने के पलंग पर विराज रहे थे तथा करुणा भाव से भरी अपनी शरीर-कान्ति से असहृदयों को भी आकर्षित कर रहे थे।।54।।

संगीतादपरांमुखोऽपि हृदये चिन्तापरोऽसौ युवा
नृत्यन्तीष्वपि तासु वामनयनास्वायोगनिद्रामगात्।
तस्मिन् सुप्तवति प्रसुप्तमखिलं शोभाढ्यमन्तःपुरं
काये किन्तु जुगुप्सित बहुतरं यज्जागरामास तत्।।55।।

उन युवा पुरुष का संगीत के प्रति चाव था, तो भी वे हृदय में चिन्तन कर रहे थे। अत एव उन सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों के नाचते रहने पर भी उन्हें कुछ योगनिद्रा आ गई। उनके सो जाने पर शोभा से जगमगाता हुआ वह सब अन्तःपुर सो गया। पर शरीर में जो बहुत कुछ घिनौना-घिनौना था, वह जाग उठा।।55।।

दृष्टास्ताः प्रतिबुध्य मंजुवसनाः क्षिप्ताः श्मशाने यथा
चेष्टाभिर्विकृतिं गता विददधोः प्रेतांगनाविभ्रमम्।
निर्यातो विपिनं विलोक्य ससुतां गोपां शयानामसौ
रात्रौ छन्दककन्थकोपकरणो देवद्वितीयः पुरात्।।56।।

जाग कर उन्होंने सुन्दर-वस्त्र वाली उन स्त्रियों को देखा। वे ऐसी जान पड़ी कि मानो श्मशान में फेंक दी गई हों। उनकी चेष्टाए भद्दी थी। उनके हाव-भाव भूतिनियों के जैसे थे। वे बेटे के साथ सोती हुई गोपा को दोकर, छन्दक सारथि तथा कन्थक अश्व की सहायता से, वन के लिए रात में नगर से निल पड़े, (इस यात्रा में) उनके साथी (केवल) देवता ही थे।।56।।

संप्राप्तोऽनवमां प्रभातसमये प्रव्रज्य सूर्योदये
तस्माच्चारिकया विधातुमवनिं पादांकितां सर्वतः।
साश्वच्छन्दनिवर्तने कृतमतिर्दातुं निजं वाचिकं
स्नेहाढ्याय जनाय धीरमवदद् धीमान् नवीनो मुनिः।।57।।

वे प्रभात होते-होते अनवमा (अनोमा) नदी पर पहुंच गए। सूर्योदय होते-होते प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। वहाँ से पैदल चलकर अपने पैरों के चिह्नों से सब ओर पृथ्वी को चिह्नित करने के लिए घोड़े के साथ छन्दक को लौटा देने के विचार से, उन बुद्धिमान नए मुनि ने स्नेहपूर्ण अपने लोगों के लिए धीर भाव से यह संदेश दिया।।57।।

मुनिवरः

विरसहृदयं न मे यद्भवनमत्यजम्।
तत्र तन्नास्ति यद् वश्मि तेनात्यजत्।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्मवरमनुसंधातुम्।।अ।।

जो मैंने घर छोड़ा, उससे यह न समझना कि मेरे हृदय में स्नेह नहीं रहा। जिसकी मुझे चाह थी, उसका वहां अभाव था, इसलिए मैंने उसे छोड़ दिया। मैं शरण खोजने के लिए ही जा रहा हूं। मैं उस उत्तम धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिए जा रहा हूं, जिसमें परस्पर की वंचना का भाव न हो।।अ।।

द्रष्टुमिच्छामि जनं सद्धनं सज्जनम्।
दुर्जनाच्चिन्तयाम्युत्तमं निर्जनम्।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्मवरमनुसंधातुम्।।आ।।

मैं जगत् को उत्तम धन से युक्त तथा सज्जनों से पूर्ण देखना चाहता हूं। दुर्जन से मैं निर्जन को उत्तम समझता हूं। मैं शरण खोजने के लिए ही जा रहा हूं। मैं उस उत्तम धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिए जा रहा हूं, जिसमें परस्पर की वंचना का भाव न हो।।आ।।

सूनृतं भाषितं श्रोतुमिच्छाम्यहम्।
नैव कौटिल्यमनुसर्तुमिच्छाम्यहम्।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्मवरमनुसंधातुम्।।इ।।

मैं सत्य-प्रिय बात सुनना चाहताहूं। कुटिल नीति का अनुसरण करना मैं बिलकुल नहीं चाहता। मैं शरण खोजने के लिए ही जा रहा हूं। मैं उस उत्तम धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिए जा रहा हूं, जिसमें परस्पर वंचना का भाव न हो।।इ।।

युद्धवधबन्धनं यत्र खलु वर्तते।
तत्र दुर्भावना हिंसया वर्धते।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्म वरमनुसंधातुम्।।ई।।

जहाँ युद्ध, बध और बन्धन होता रहता है, वहां हिंसा-भाव के कारण दुर्भावना बढ़ती रहती है। मैं शरण खोजने के लिए ही जा रहा हूं। मैं उस उत्तम धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिए जा रहा हूं, जिसमें परपर की वंचना का भाव न हो।।इ।।

जन्मना विप्रता नापि नो शूद्रता।
कर्मणाभीप्सिता यदि चात्र विप्रता।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्मवरमनुसंधातुम्।।उ।।

ब्राह्मणभाव जन्म से नहीं होता, शूद्रभाव भी जन्म से नहीं होता। यहाँ यदि ब्राह्मणभाव हो तो मेरी इच्छा उसे कर्म द्वारा प्राप्त करने की है। मैं शरण खोजने के लिए ही जा रहा हूं। मैं उस उत्तम धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिए जा रहा हूं, जिसमें परस्पर की वंचना का भाव न हो।।उ।।

आनृशंस्येन वर्ततां संप्रवर्तताम्।
निश्छलं हिताय जनो जनमनुवर्तताम्।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्मवरमनुसंधातुम्।।ऊ।।

मैं चाहता हूं कि आदमी करुणा से व्यवहार करें उत्तम व्यवहार करें। छल से रहित हो आदमी-आदमी के हित में साथ दें। मैं शरण खोजने के लिए ही जा रहा हूं। मैं उस उत्तम धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिए जा रहा हूं, जिसमें परस्पर की वंचना का भाव न हो।।ऊ।।

द्वीपं सर्वकुशलं विगतसर्वपापकम्।
स्रष्टुं शुद्धचित्तं यामि तपसेऽसहायकम्।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्मवरमनुसंधातुम्।।ऋ।।

मैं अकेला तप करने जा रहा हूं ताकि शुद्ध-चित्त के, सब प्रकार के पापों से रहित, तथा सब प्रकार के पुण्यों से युक्त एक द्वीप की सृष्टि कर सकूं। मैं शरण खोजने के लिए ही जा रहा हूं। मैं उस उत्तम धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिए जा रहा हूं, जिसमें परस्पर की वंचना का भाव न हो।।ऋ।।

तत्त्वमुपलभ्य पुरमागमिष्याम्यहम्।
साधय स्वस्ति ते हन्त साधयाम्यहम्।।
यामि शरणमेवाप्तुम्।
यत्र मिथोवंचना न तं धर्मवरमनुसंधातुम्।।ॠ।।

तत्त्व-लाभ कर मैं नगर आऊंगा। तुम्हारा कल्याण हो। जाओ। अहो! मैं भी जा रहा हूं। मैं शरण पाने के लिए ही जा रहा हूं। मैं उस उत्तम धर्म के अनुसंधान (खोज) के लिए जा रहा हूं, जिसमें परस्पर की वंचना का भाव न हो।।ॠ।।

संदिश्यैवममुं निवर्त्य सहयं शोकाकुलं निर्गतश्
छन्दोऽप्यश्वसहायकः प्रविशति स्मानन्दहीनं पुरम्।
दृष्ट्वार्तं सगणं नृपं नृपवधूगोपासमेतं जगौ
कर्तुं शोकविनोदनं दृढमतिर्यन्ता विनम्रं वचः।।58।।

उसे यों संदेश दे, घोड़े के साथ विलाप करते छन्दक को लौटा कर, वे चले गए। छन्दक ने भी घोड़े के साथ उस आनन्द हीन नगर में प्रवेश किया। वहाँ शाक्यगण के साथ भार्या-गौतमी तथा (स्नुषा) गोपा के सहित राजा को दुःखी देख उनका शोक कम करने के लिए वह स्थिरबुद्धि सारथी नरमी से बोला।।58।।

सारथिः

कामिजनोचितवेशस्त्यक्तः।
सकलो गणः सततमनुरक्तः।।
त्यक्तो जनः सतातः।
बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः।।अ।।

भोगियों के योग्य वेश का उन्होंने त्याग कर दिया। निरन्तर अनुरागी सूंपर्ण (शाक्य-) गण का त्याग कर दिया। उन्होंने पिता के सहित स्वजनों का त्याग कर दिया। बहुत गुण खोजने के लिए चले गए।।अ।।

पुनरायास्यति लब्ध्वा कुशलम्।
अभयं व्युपशमफलमतिविमलम्।।
त्यक्तो जनः सतातः।
बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः।।आ।।

वे भय से रहित, शान्ति का फल देने वाले, अत्यन्त निर्मल, कुशल-क्षेम का लाभ कर फिर आएँगे। उन्होंने पिता के सहित स्वजनों का त्याग कर दिया। बहुत गुण खोजने के लिए वे चले गए।।आ।।

तस्य बुद्धिबलवीर्यमविचलम्।
ध्रुवमीप्सितं विधाता सफलम्।।
त्यक्तो जनः सतातः।
बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः।।इ।।

उनकी बुद्धि, उनकी शक्ति तथा उनकी वीरता, ऐसी नहीं जिसे कोई डिगा सके। निश्चय ही वे अपना मनोरथ सफल करेंगे। उन्होंने पिता के सहित स्वजनों का त्याग कर दिया। बहुत गुण खोजने के लिए वे चले गए।।इ।।

कर्तुमशोकं जनं हितैषी।
यातः किं कुशलैकगवेषी।।
त्यक्तो जनः सतातः।
बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः।।ई।।

वे हितैषी दुनिया को शोक से रहित करने के लिए, यहां कुशल क्या है एक मात्र इसकी खोज करने की इच्छा से चले गए। उन्होंने पिता के सहित स्वजनों का त्याग कर दिया। बहुत गुण खोजने के लिए वे चले गए।।ई।।

भयं न तस्य स भवभयहारी।
भवनवदेव स वने विहारी।।
त्यक्तो जनः सतातः।
बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः।।उ।।

उन्हें भय नहीं है। वे भव भय हरण करने वाले हैं। वे वन में उसी तरह विहार करते रहते हैं, जैसे घर में विहार करते थे। उन्होंने पिता के सहित स्वजनों का त्याग कर दिया। बहुत गुण खोजने के लिए वे चले गए।।उ।।

तिर्यंचोऽपि विदधते प्रीतिम्।
क्षुद्रभावरहितां गतभीतिम्।।
त्यक्तो जनः सतातः।
बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः।।ऊ।।

पशु पक्षी भी उनसे ऐसी प्रीति करते हैं, जिसमें न तो क्षुद्रभाव (हिंसाभाव) ही होता है, और न भय की भावना होती है। उन्होंने पिता

के सहित स्वजनों का त्याग कर दिया। बहुत गुण खोजने के लिए वे चले गए।।ऊ।।

तस्य कृते चिन्ता कास्माकम्।
स च चिन्तकः सदैवास्मकम्।।
त्यक्तो जनः सतातः।
बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः।।ऋ।।

उनकी हमें क्या चिन्ता करनी है? वे ही हम-सब की नित्य चिन्ता करने वाले हैं। उन्होंने पिता के सहित स्वजनों का त्याग कर दिया। बहुत गुण खोजने के लिए वे चले गए।।ऋ।।

चिन्तामणिमुपलब्धुं यातः।
चिन्तामणिमानेतुं यातः।।
त्यक्तो जनः सतातः।
बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः।।ॠ।।

वे चिन्तामणि की प्राप्ति के लिए गए हैं। वे चिन्तामणि लाने के लिए गए हैं। उन्होंने पिता के सहित स्वजनों का त्याग कर दिया। बहुत गुण खोजने के लिए वे चले गए।।ॠ।।

यन्त्रैवं प्रतिबोधितः शुभमतेः संकाममानः शुभं
किंचित् स्वास्थ्यमुपाश्रितो गणयुतो भूभृत् सभार्यस्नुषः।
द्रष्टुं तं पुनरागतं निजसुतं संप्राप्ततत्त्वामृतं
राज्यस्थोऽपि वनीव नित्यमचरद् गोपामनः शान्तये।।59।।

सारथी के द्वारा यों समझाने बुझाने पर, पत्नी तथा पुत्र-वधू के साथ राजा, उन कल्याणमति कुमार की कल्याण कामना करते हुए, कुछ स्वस्थ हुए। अपने उन पुत्र को तत्त्वामृत पाकर फिर आया हुआ देखने के लिए राज्याधिकारी रहते हुए भी राजा शुद्धोदन सर्वदा गोपा के मन को शान्त रखने के लिए आरण्यक की भांति रहने लगे।।59।।

हित्वा राज्यमुपाश्रिताय विपिनं शान्तौ मनः कुर्वते
गत्वा लोकविविक्तमाश्रमपदं तत्त्वं मुनीन् पृच्छते।
दृष्ट्वाराडमथोद्रकं मुनिवरं ध्यानाब्धिपारं यतेः
संयुक्ताय च पंचवर्गयतिभिस्तप्तुं तपस्ते नमः।।60।।

राज पाठ छोड़ वन में बसेरा करने वाले, शान्ति में मन लगाने वाले, दुनियाँ से दूर एकान्त आश्रमों में जाकर मुनियों से तत्त्व-परिपृच्छा करने वाले, मुनिवर अराड तथा उद्रक के दर्शन कर ध्यान के पार पहुंचने वाले, तपस्या करने के लिए पंचवर्गीय भिक्खुओं से युक्त, (हे नवीन मुनि) तुम्हें नमस्कार हो।।60।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
अभिनिष्क्रमणाभिधानः
षष्ठः प्रसंगः।।

सप्तमः सर्गः

तपश्चरणम्

निष्क्रान्तः स्वगणं विसृज्य ससुतां भर्यां गृहाद् गौतमो
राज्यार्धेन निमंत्रितोऽपि मगधाधीशेन नीरागवान्।
प्राप्तुं तत्त्वमुपागतो वनमिदं चर्यां चिकीर्षन् पराम्
इत्येषा प्रसृता प्रवृत्तिरखिलां व्याप्योरुविल्वां जने।।61।।

अपने गणराज्य तथा पुत्र सहित पत्नी को छोड़कर गौतम घर से निकल गए हैं। मगध महाराज ने उन्हें अपना आधा राज्य देकर अपने यहां रहने का न्योता दिया, तो भी वे लोभ लालच में नहीं फंसे। वे तत्व प्राप्ति के आचरण करने के लिए इस वन में पहुंचे हैं। यह समाचार समूची उरुवेला में व्याप्त होकर लोगों में फैल गया।।61।।

सेनानीतनुजोपलभ्य सकलं वृत्तं सुजाता जनैर्
पुण्यैः पावयितुं निजं नवमुनेः सेवाविधानोत्थितैः।
कृत्वा कृच्छ्रतपः परामपचितिं नेनीयमानं तनूम्
अन्याभिश्च कुमारिकाभिरुपसृत्यैनं जगौ सांजलिः।।62।।

सेनानी की पुत्री सुजाता, लोगों से सब वृत्तान्त सुनकर, नवीन महर्षि की सेवा करने से उत्पन्न पुण्यों से अपने को पवित्र करने के लिए, कठोर तपस्या से अपने शरीर को अत्यन्त कृश करने में निरन्तर लगे हुए उनके पास अन्य कुमारियों के साथ जाकर बोली।।62।।

सुजाता

इह वस निजचर्यया विधेहि ग्रामान् अतिप्रणीतान्।
तव चरणांकनलब्धवैभवान् पूजास्पदमुपनीतान्।।
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा।।अ।।

यहां निवास करो। अपनी चर्या से गाँवों को परम पवित्र बना दो। तुम्हारे चरण-चिह्नों से इन्हें वैभव मिले, ये पूजा के स्थान बनें। इस वन में अच्छे स्थान हैं, अच्छी हवा है। हमारे गांव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।।अ।।

प्रसृतं यशस्तवातिनिर्मलं सेवां जनः करिष्यति।
तपसे यदपेक्षितं वस्तु तत्सकलं समाहरिष्यति।।
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा।।आ।।

तुम्हारा अत्यन्त निर्मल यश फैला हुआ है। लोग सेवा करेंगे। तपस्या के लिए जो वस्तु चाहिए, वह ला देंगे। इस वन में अच्छे स्थान हैं, अच्छी हवा है। हमारे गांव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।।आ।।

तरवः सलताः सघनच्छाया यथाकालफलवन्तः।
उटजं विधास्यन्ति गोपाला गुणवति प्रत्ययवन्तः।।[1]
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा।।इ।।

यहाँ घनी छाया के पेड़ हैं, जिन पर लताएं चढ़ी हुई हैं, जो ऋतु के अनुसार फलते रहते हैं। तुम गुणवान हो, गोपालों की तुमसे प्रीति है। वे तुम्हारे लिए कुटिया बना देंगे। इस वन में अच्छे स्थान है, अच्छी हवा है। हमारे गांव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।।इ।।

गोचरभूमिमया वनभागा हिंसमृगैरवहीनाः।
शुभैः खगमृगैः परिपूर्णा ग्रीष्मेऽपि दवदहनहीनाः।।
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा।।ई।।

वन-खन्ड गोचर भूमियों से भरे पेड़ हैं। हिंसक जानवर नहीं हैं। वे उत्तम पशु-पक्षियों से पूर्ण हैं। गर्मी के दिनों में भी दावाग्नि नहीं लगती। इस वन में अच्छे स्थान हैं, अच्छी हवा है। हमारे गांव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।।ई।।

1. पांडुलिपि त्रुटिपूर्ण है। उसमें पाठ उटजं विधास्यन्ति गोयालास्त्वपि है। उसे ''उटजं विधास्यन्ति गांपाला गुणवति प्रत्ययवन्तः'' किया गया है।

दिवसे सगोगणा गोपानां बालबालिका वन्याः।
शाद्वले हि दृश्यन्ते गहने काष्ठहारिकाः कन्याः।।
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा।।उ।।

जंगल में रहने के अभ्यासी गोपबालक तथा गोपबालिकाएं घास के मैदानों में, तथा लकड़हारिन लड़कियां घने जंगल में दिखाई देती रहती हैं। इस वन में अच्छे स्थान हैं, अच्छी हवा है। हमारे गांव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।।उ।।

किमपि भयं न, करिष्यति कोऽपि न पीडामिह चरतस्ते।
अहो भाग्यमिदमस्माकं करवाम सदैव नमस्ते।।
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा।।ऊ।।

यहाँ कोई भय नहीं है। यहाँ विचरते हुए तुम्हें कोई नहीं सताएगा। यह हमारा अहो भाग्य है, सर्वदा तुम्हें नमस्कार कर सकेंगे। इस वन में अच्छे स्थान है। अच्छी हवा है। हमारे गांव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।।ऊ।।

एकान्तः सुलभस्ते कर्तुं तपो विधातुं ध्यानम्।
विहर यथेच्छं विचर सदेदं विघ्नविहीनं स्थानम्।।
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा।।ऋ।।

तप करने तथा ध्यान करने के लिए यहां एकान्त सुलभ है। इच्छानुसार यहाँ सर्वदा विहार करो, विचरण करो। यह विघ्न बाधा से रहित स्थान है। इस वन में अच्छे स्थान हैं, अच्छी हवा है। हमारे गांव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।।ऋ।।

भवतु समायान्तीनां सुलभं तव दर्शनमस्माकम्।
सेवां कर्तुं तथा वन्दनां यथाक्षणं युष्माकम्।।
इयं वनी सल्लयनसमीरा।
नैरंजना सुतीर्थास्माकमुपग्रामं शुभनीरा।।ॠ।।

हम यथा समय जब तुम्हारी सेवा करने तथा वन्दना करने आएं तब हमें तुम्हारा दर्शन सुलभ होता रहे। इस वन में अच्छे स्थान हैं, अच्छी हवा

है। हमारे गांव के पास नैरंजना नदी का अच्छा घाट है, साफ पानी है।।ॠ।।

मौनेनैव कृतां मुनेरनुमतिं ज्ञात्वा सुजाता क्षणं
संसेव्यादरतो मुनिं गतवती नत्वा समं पंचभिः।
एनामेव वनस्थलीं श्रितवतो मे तत्त्वसिद्धिर्भवेद्
इत्येवं हृदयेऽवधार्य विविधं तेपे तपः षड् हिमाः।।63।।

मौन से मुनि की स्वीकृति जानकर सुजाता आदर के साथ उनकी क्षण भर सेवा कर, अन्य पांच मुनियों सहित उन मुनि को नमस्कार कर चली गई। इस वनस्थली के सहारे मुझे परमार्थ की सिद्धि होगी ऐसा हृदय में निश्चय कर छः वर्षों तक उन्होंने विविध प्रकार की तपस्याएँ की।।63।।

दौर्बल्याद‍तिमूर्छितोऽपि मरणासन्नोऽपि तप्त्वा तपस्
तत्त्वं नाध्यगमन्न चेदमयनं तत्त्वार्थमित्यैक्षत।।
कायस्वास्थ्यमवाप्तुमादृतवतः स्थूलान्नमस्यान्तिकात्
ते पंचाप्यपसर्तुरेवमवमं संचिन्तयन्तोऽन्यतः।।64।।

तपस्या कर-कर दुर्बलता से वे बिलकुल मूर्छित हो जाते थे, मरने-मरने के जैसे हो जाते थे, पर कोई तत्त्व नहीं मिल पाता था। इसलिए उन्हें ऐसा लगा कि यह तत्त्व पाने का मार्ग नहीं। शरीर का स्वास्थ्य लाभ करने के लिए जब उन्होंने स्थूल भोजन के प्रति रुचि की, तब वे पांचों साथी इनके पास से यों हीन ढंग से सोचते हुए दूसरी जगह चले गए।।64।।

पंचवर्गीयः

त्यक्तं राज्यं त्यक्ता दाराः।
स्वजनाः शाक्याः सपरीवाराः।।
तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्।।अ।।

राज्य छोड़ दिया, पत्नी छोड़ दी। अपने स्वजन शाक्यों को परिवार के साथ छोड़ दिया। तप किया पर तत्त्व न मिला। अब खा-पी कर यहां इन्हें तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।।अ।।

त्यक्तोऽराडमुनिर्मुनिवीरः।
उद्रकोऽपि ध्याने गंभीरः।।

तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्।।आ।।

मुनियों में वीर्यवान् अराड मुनि को छोड़ दिया, ध्यान में गंभीर उड्क मुनि को भी छोड़ दिया। तप किया पर तत्त्व न मिला। अब खा-पीकर यहां इन्हें तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।।आ।।

त्यक्तो बिंबिसारभूभर्ता।
राज्यार्धस्योपायनकर्ता।।
तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्।।इ।।

अपने आधे राज्य का उपहार देने वाले महाराज बिम्बिसार को छोड़ दिया। तप किया, पर तत्त्व न मिला। अब खा-पीकर यहां इन्हें तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।।इ।।

त्यक्तो ग्रामो वनमायातः।
तप्तुं तपो विजनमायातः।।
तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्।।ई।।

गांव छोड़ दिया, जंगल आ गए। तप करने एकान्त में आ गए। तप किया पर तत्त्व न मिला। अब खा-पीकर यहां इन्हें तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।।ई।।

त्यक्तः संगः, स्वात्मनि लीनः।
त्यक्तः स्थूलाहारः, क्षीणः।।
तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्।।उ।।

संग (सांसारिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति) छोड़ दिया, अपने आप में रत हो गए। स्थूल भोजन छोड़ दिया, क्षीण हो गए। तप किया पर तत्त्व न मिला। अब खा-पीकर इन्हें यहां तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।।उ।।

तपःक्षीणतनुरपि तेजस्वी।
तत्त्वं नाधिजगाम मनस्वी।।
तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्।।ऊ।।

तेजस्वी एवं मनस्वी का शरीर तप से क्षीण हो गए, तत्त्व हाथ न लगा। तप किया पर तत्त्व न मिला। अब खा-पीकर इन्हें यहां तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।।ऊ।।

त्यक्तं तपोऽपि तेनेदानीम्।
सेत्स्यति न किमपि तत्त्वमिदानीम्।।
तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्।।ऋ।।

इस समय उन्होंने तप भी छोड़ दिया। अब किसी तत्त्व की सिद्धि न हो पाएगी। तप किया पर तत्त्व न मिला। अब खा-पीकर इन्हें यहां तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।।ऋ।।

वयमस्माद् अन्यतो व्रजामः।
वयमस्माद् अन्यतो वसामः।।
तपः कुर्वता नाप्तम्।
भुक्तवता कथमनेन तत्त्वामृतमिह भवेदवाप्तम्।।ॠ।।

हमें इनसे दूसरी जगह जाना है, हमें इनसे दूसरी जगह बसना है। तप किया पर तत्त्व नहीं मिला। अब खा-पीकर इन्हें यहां तत्त्वामृत कैसे मिल सकेगा।।ॠ।।

एवं तेषु गतेषु गौतममुनिर्वीर्यद्वितीयो वसत्
स्थूलाहारपरायणो निजबलं लेभे तनोः पूर्ववत्।
तं दृष्ट्वा नयनाभिराममतनोः कान्तिं क्षिपन्तं श्रिया
लोकैस्तत्र महानसौ श्रमण इत्याख्या नवीना कृता।।65।।

इस प्रकार उनके चले जाने पर गौतम मुनि वहीं जमें रहें, उनका दूसरा साथी वहां उनका पराक्रम ही था। स्थूल भोजन का सेवन कर उन्हें पहले के जैसा ही शरीर का बल मिल गया। कामदेव की शोभा को अपने शरीर की शोभा से मात करने वाला, उन्हें नयनाभिराम देख कर लोगों ने (उनके महान् सौन्दर्य के कारण) उनका महाश्रमण यह नवीन नाम रख दिया।।65।।

हित्वा कृच्छ्रतपः समाधिपरमे भिक्षाश्रयिणयागता
वैशाखी परिपूर्णचन्द्रवदना चेतो मुदं तन्वती।
कृत्वा पायसमत्युदारमसमं तेनासमं गौतमं
भिक्षार्थं विचरन्तमाप्य भवनं नीत्वा सुजतार्चयत्।।66।।

कठोर तप छोड़ कर वे मुनि समाधि में लगे रहते थे, भिक्षा से जीते थे। यों एक दिन वैशाखी आ गई, परिपूर्ण चन्द्रमा ही उसका मुख था। वह चित्त को आनन्द देने वाली थी। (उस दिन) अत्यन्त उत्तम अतुलनीय पायस बनाकर उन अतुलनीय गौतम को भिक्षा के लिए विचरता पाकर घर में लाकर, सुजाता ने पूजा।।66।।

सेनानी-तनुजाऽसमा जनपदे कालोऽसमो माधवः
पात्रे स्वर्णमयेऽसमं धृतमिदं भोज्यं मदर्थे कृतम्।
भोज्यं पायसमत्युदारमसमं पूजाऽसमा संस्कृता
भुक्त्वा चैतदवाप्स्यतेऽसमपदं तेनाद्य नो संशयः।।67।।

सेनानी की पुत्री जनपद में अतुलनीय है, वैशाख मास का समय अतुलनीय है, मेरे लिए बनाकर स्वर्णपात्र में रखा गया यह भोजन अतुलनीय है, यह भोजन अत्यन्त उत्तम क्षीर का बना अतुलनीय है, मेरी पूजा अतुलनीय की गई है, इसे खाकर अतुलनीय पद प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं।।67।।

इत्येवं हृदये विचिन्त्य कुशलां बद्धांजलिं संनतां
कल्याणीं ददतीं हविष्यमतुलं कल्याणकामां शुभाम्।
तस्याः पूर्वतनीं कृतां बहुविधां पूजां च चित्ते स्मरन्
तां पुण्यैर्वचनैश्चकार मुदितां सर्वात्मना[1] गौतमः।।68।।

इस प्रकार हृदय में सोच कर पहले भी उसके द्वारा की गई नाना प्रकार की पूजा का मन में स्मरण कर, अपने पुण्य वचनों से गौतम ने, चतुर, हाथ जोड़कर, नम्र भाव से खड़ी, कल्याण की कामना करने वाली, पवित्र, अतुलनीय हविष्य प्रदान करती हुई उस कल्याणी सुजाता को पूर्ण रूप से आनन्दित किया।।68।।

महाश्रमणः

तव पूजा सुफलाय भवित्री।
तव पूजा कुशलाय भवित्री।।
अमृतोपममुपनीतम्।
अमृतमवाप्तव्यं भुक्त्वेदं विमतं मे व्यपनीतम्।।अ।।

1. पांडुलिपि में 'सर्वात्मगा' पाठ है।

तुम्हारी पूजा सुफल के लिए होगी, तुम्हारी पूजा कुशल के लिए होगी। अमृत जैसा ही तुम लाई हो। इसका भोजन कर मुझे अमृत पाना है, इसमें मुझे दुविधा नहीं रह गई है।।अ।।

मम मंगलकामा शुभकामा।
त्वमसि भव त्वं सफलितकामा।।
अमृतोपममुपनीतम्।
अमृतमवाप्तव्यं भुक्त्वेदं विमतं मे व्यपनीतम्।।आ।।

तुम मेरी मंगल कामना करने वाली हो, शुभ कामना करने वाली हो, तुम्हारी कामनाएं सफल हों। अमृत जैसा ही तुम लाई हो। इसका भोजन कर मुझे अमृत पाना है, इसमें मुझे दुविधा नहीं रह गई है।।आ।।

मम धर्मे त्वं परमसहाया।
मम कुशले त्वं परमसहाया।
अमृतोपममुपनीतम्।
अमृतमवाप्तव्यं भुक्त्वेदं विमतं मे व्यपनीतम्।।इ।।

मेरे धर्म में तुम अत्यन्त सहायक रही हो, मेरे कुशल क्षेम में तुम अत्यन्त सहायक रही हो। अमृत जैसा ही तुम लाई हो। इसका भोजन कर मुझे अमृत पाना है, इसमें मुझे दुविधा नहीं रह गई है।।इ।।

पंचापि च मे गताः सहाया।
स्वसृभिस् त्वं मे स्थिता सहाया।।
अमृतोपममुपनीतम्।
अमृतमवाप्तव्यं भुक्त्वेदं विमतं मे व्यपनीतम्।।ई।।

मेरे पांचों ही सहायक चले गए। बहनों के साथ पर तुम सहायक बनी रहीं। अमृत जैसा ही तुम लाई हो। इसका भोजन कर मुझे अमृत पाना है, इसमें मुझे दुविधा नहीं रह गई है।।ई।।

दुष्करचर्यायां संदेह-
गतमपालयं त्वयका देहम्।।
अमृतोपममुपनीतम्।
अमृतमवाप्तव्यं भुक्त्वेदं विमतं मे व्यपनीतम्।।उ।।

तुम्हारी मदद से ही दुष्करचर्या में संदेह को प्राप्त शरीर की मैंने रक्षा की। अमृत जैसा ही तुम लाई हो। इसका भोजन कर मुझे अमृत पाना हैं,

इसमें मुझे दुविधा नहीं रह गई है।।उ।।

धृता इमे तव यूषैः प्राणाः।
स्थिता इमे तव यूषैः प्राणाः।।
अमृतोपममुपनीतम्।
अमृतमवाप्तव्यं भुक्त्वेदं विमतं मे व्यपनीतम्।।ऊ।।

तुम्हारे जूस से प्राण रुक गए, तुम्हारे जूस से प्राण ठहर गए। अमृत जैसा ही तुम लाई हो। इसका भोजन कर मुझे अमृत पाना है, इसमें मुझे दुविधा नहीं रह गई है।।ऊ।।

कृच्छ्रे तपसि रूपमपयातम्।
तव सेवया पुनस्तत् प्राप्तम्।।
अमृतोपममुपनीतम्।
अमृतमवाप्तव्यं भुक्त्वेदं विमतं मे व्यपनीतम्।।ऋ।।

कठोर तपस्या करते समय मेरा रूप चला गया था, उसे फिर मैंने तुम्हारी सेवा से प्राप्त किया। अमृत जैसा ही तुम लाई हो। इसका भोजन कर मुझे अमृत पाना है, इसमें मुझे दुविधा नहीं रह गई है।।ऋ।।

अद्य तवान्नबलेन विजेष्ये।
अहं मारमपि वशीकरिष्ये।।
अमृतोपममुपनीतम्।
अमृतमवाप्तव्यं भुक्त्वेदं विमतं मे व्यपनीतम्।।ॠ।।

मैं आज तुम्हारे अन्न के बल पर मार को भी जीतूँगा, मार को भी वश में करूंगा। अमृत जैसा ही तुम लाई हो। इसका भोजन कर मुझे अमृत पाना है, इसमें मुझे दुविधा नहीं रह गई है।।ॠ।।

इत्युक्त्वा परमान्नपात्रममलं हस्ते गृहीत्वा मुनि-
र्नद्यास्तीरमुपैत्य हृष्टमनसा भुंक्ते स्म तत्पायसम्।
भुक्त्वा पूर्णबलं शरीरमनसोर्लब्ध्वा प्रसन्नान्तरः
पात्रं स्वर्णमयं गतार्थमिति तन्नद्याः प्रवाहेऽक्षिपत्।।69।।

ऐसा कह कर, निर्मल पायस का पात्र हाथ में ले, नदी के तीर पर जाकर, हर्ष भरे मन से मुनि ने उस पायस का भोजन किया। भोजन कर शरीर और मन में पूर्ण बल पाकर भीतर भीतर ही प्रसन्न हो गए।

स्वर्णमय पात्र से अब कुछ प्रयोजन नहीं   ऐसा सोचकर उसे नदी के प्रवाह में फेंक दिया।।69।।

तिष्ठन्तीमतिभक्तिभावपरमां विभ्राजमानां गुणै
र्भुक्त्वा धर्मकथामुखेन कृतवान् हृष्टां सुजातां तटे।
एका तं प्रणिपत्य सादरमगात् क्षिप्रं गृहानात्मनो
धीरोऽन्यश्च मृगेन्द्रखेलगमनो बोधिद्रुमं प्रस्थितः।।70।।

नदी के किनारे अत्यन्त भक्ति भाव में परायण, गुणों से शोभायमान, सुजाता को भोजन करने के अनन्तर धर्मकथा के द्वारा मुनि ने आह्लादित किया। एक उन्हें आदर के साथ नमस्कार कर जल्दी-जल्दी अपने घर चल पड़ी, और दूसरा धीर (पुरुष) मृगराज की ललित गति के साथ बोधिवृक्ष की ओर चल पड़ा।।70।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
तपश्चरणाभिधानः
सप्तमः प्रसंगः।।

अष्टमः प्रसंगः

माराविजयः[1]

आस्तीर्यासनमादरादुपनतैः श्रीमत्तृणैः स्वस्तिकात्
पर्यकं श्रमणो बबन्ध निबिडं बोधिद्रुमे बोधये।
ब्रह्माद्या जहृषुस्तदा सुमनसो मोदाच्चकम्पे मही
मारः खिन्नमनाः पुरापि तपसस्तस्याद्य चक्रे रुषम्।।71।।

बोधि के लिए बोधिवृक्ष के तले स्वस्तिक घसियारे से पाए हुए सुन्दर तृणों का आसन बिछाकर श्रमण गौतम पलथी मारकर बैठ गए। ब्रह्मा आदि देवता हर्षित हुए। आनन्द से पृथ्वी थर-थरा उठी। पर मार जो पहले से ही उनकी तपस्या के कारण दुखी था, अब उसे क्रोध आ गया।।71।।

रत्या सार्धमुपागतं द्रुमतले वामांगनाभिर्वृतं
व्याप्तं शस्त्रकरैः करालवदनैः सत्त्वैर्भयोत्पादकैः।
कर्तुं भीष्ममुपद्रवं बहुविधं बोध्युद्यतस्योद्यतं
शान्ता मारममुं सुराः शमयितुं क्रोधान्धमेवं जगुः।।72।।

बोधिवृक्ष के नीचे काम रति के साथ आ पहुंचा। उसके साथ सुन्दरियाँ थीं तथा भय उपजाने वाले भयंकर मुंह वाले शस्त्रधारी जीव थे। वह बोधि के लिए तत्पर मुनि के प्रति बहुत प्रकार के भयंकर उपद्रव करने पर उतारू हो गया था। शान्त देवगण क्रोध से अन्धे उस मार को शान्त करने के लिए यों बोले।।72।।

सुराः

न हि नितम्बिनी कापि करोति शिशोश्चेतस्युन्मादम्।
किन्तु शिशुः प्रभवति कर्तुं युवतीजनमनःप्रसादम्।।
विरमास्माद् व्यवसायात्।
मार, कामहिंसाभ्यां सहितादतिकुत्सितादुपायात्।।अ।।

1. पांडुलिपि में 'मारविजयः' पाठ है।

जवानी से भरी कोई स्त्री बच्चे को मतवाला नहीं बना सकती। हां, बच्चा जरुर जवान औरतों का मन पसन्न कर सकता है। हे मार, तुम इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो।।अ।।

एतं मारकन्यकाः दृष्ट्वा मदन लभेरन् भावम्।
स्वयं व्रीडिता रूपेणास्य न जनयेयुः स्मर, हावम्।।
विरमास्माद् व्यवसायात्। ऊ
मार, कामहिंसाभ्यां सहिताद् अतिकुत्सितादुपायात्।।आ।।

हे मदन, इन्हें देखकर मार कन्याओं के मन में शृंगार भाव उपजेगा। पर वे इनके रूप से लजा जाएंगी। हे स्मर, उनमें हाव न उपज सकेगा। हे मार, तुम इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो।।आ।।

तमुपलब्धुमेताः शंके दिव्यांगरागमपि जहतीः।
भस्मधूसरा विचरिष्यन्ति तपः कर्माणि विदधतीः।।
विरमास्माद् व्यवसायात्।
मार, कामहिंसाभ्यां सहिताद् अतिकुत्सितादुपायात्।।इ।।

यह आशंका भी है। इन्हें पाने के लिए ये अपना दिव्य अंगराज छोड़, विभूति मल कर तप करती हुई जरूर विचरने लगेगी। हे मार, इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो।।इ।।

तद्रूपासक्ताः पूर्वं पश्चात्तमाराधयितुम्।
त्वां विहाय यास्यन्ति शरणमेतस्य शुभं साधयितुम्।।
विरमास्माद् व्यवसायात्।
मार, कामहिंसाभ्यां सहिताद् अतिकुत्सितादुपायात्।।ई।।

पहले ये उनके रूप पर आसक्त होंगी और बाद में उन्हीं की उपासना करने के लिए अपनी शुभसाधना के लिए तुम्हें छोड़कर उनकी शरण में चली जाएगी। हे मार, इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो।।ई।।

एवं निष्परिवारो भविता, त्वां तस्मै दहयन्तम्।
रतिरपि यास्यति हित्वा, तं परिपूजयितुं मतिमन्तम्।।

विरमास्माद् व्यवसायात्।
मार, कामहिंसाभ्यां सहिताद् अतिकुत्सितादुपायात्।।उ।।

यों तुम परिवार हीन हो जाओगे। उनके प्रति द्रोह करने पर तुम्हें रति भी छोड़ कर उन बुद्धिमान की पूजा सेवा में चली जाएगी। हे मार, इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो।।उ।।

हिंस्राः सत्त्वा इमे निरर्थाः किं कर्तुं प्रभवेयुः।
सौम्यभावमुपागच्छेयुस्तत्सविधे चेद् गच्छेयुः।।
विरमास्माद् व्यवसायात्।
मार, कामहिंसाभ्यां सहिताद् अतिकुत्सितादुपायात्।।ऊ।।

ये हिंसक जीव किसी काम के नहीं है। ये क्या कर सकेंगे? उनके पास पहुंचेंगे तो इनका स्वभाव सौम्य हो जाएगा। हे मार, इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो।।ऊ।।

कुसुमशरैः किं त्वमपि करिष्यसि वद कीदृशमाघातम्।
गच्छ गृहीत्वा कुसुमानि त्वं कुरु तस्मै प्रणिपातम्।।
विरमास्माद् व्यवसायात्।
मार, कामहिंसाभ्यां सहिताद् अतिकुत्सितादुपायात्।।ऋ।।

तुम भी फुलों के बाणों से बोलो, कैसा घाव करोगे? तुम फूल लेकर जाओ, और उन्हें प्रणाम करो। हे मार, इस काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो।।ऋ।।

सकलकामनाहीनं हिंसाविरतं सुकृतद्वारम्।
सानुक्रोशः सन्नुपेहि तं भज भज वारं वारम्।।
विरमास्माद् व्यवसायात्।
मार, कामहिंसाभ्यां सहिताद् अतिकुत्सितादुपायात्।।ॠ।।

सब कामनाओं से रहित, हिंसा से विरत, पुण्य के द्वार भूत, उन मुनि के पास सदय भाव से जाओ और उनका बार-बार भजन करो, बार-बार भजन करो। हे मार, इन काम और हिंसा से युक्त अपने अत्यन्त नीच उपाय वाले प्रयत्न को छोड़ दो।।ॠ।।

इत्येवं प्रतिबोधितोऽपि कुपितः पुष्पेषुसंघं क्षिपन्
दिव्यास्ता लडितैरपि प्रमथितुं चेतोऽस्य कन्या नुदन्।

हिंस्रैः सत्त्वगणैर्मुहुर्मुहुरिमं रात्रौ तथा भाययन्
अन्ते क्षीण इव क्षमां विनिपतन् रत्या कराभ्यां धृतः।।73।।

उस प्रकार समझाने-बुझाने पर भी कुपित मार ने पुष्प-बाणों की राशि उन पर फेंकी। शृंगार क्रीड़ाओं से उनके चित्त को मथ डालने के लिए उन दिव्य-कन्याओं को प्रेरित किया, रात में हिंसक जीवों के गणों से बार-बार उन्हें डराया। पर अन्त में थक सा गया और भूमि पर गिरने लगा, पर रति ने दोनों हाथों में थाम लिया।।73।।

दृष्ट्वा निर्जितमात्मयोनिमजिताप्यद्धा स्वयं निर्जिता
व्यालोक्यैव विकम्पमानमतनुं त्रस्ता भयात्कम्पिता।
संज्ञां कांचिदुपेतमैक्ष्य मदनं संज्ञामवाप्ता रति
र्नत्वा बोधिपरं सवाष्पपुलका धीरं ह्यधोरा जगौ।।74।।

रति स्वयं नहीं हारी थी, पर कामदेव को हारा हुआ देखकर स्वयं भी हार मान गई। कामदेव को कांपता देखकर ही वह डर गई और भय से कांपने लगी। कामदेव को कुछ होश आया देख उसे भी होश आ गया। वह आंसू भर, रोमांचित हो, अधीर होती हुई भी उन बोधि की प्राप्ति में लगे हुए मुनि को नमस्कार कर धीर भाव से बोली।।74।।

रतिः

त्वं शरणं शरणं वचनं ते शरणं शरणमुपेताः।
क्लेशहरेण गुणेन गिरस्ते सामग्र्येण समेता।।
जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।अ।।

तुम शरण हो, तुम्हारे वचन शरण हो, तुम्हारे शरणागत शरण हैं। तुम्हारे वचन क्लेश हरने वाले तथा एकता के गुण से युक्त है। हे धर्मनि-धान, तुम्हारी जय हो। हे शान्ति-मति वाले, करुणा के उद्भवस्थान, कुशल-क्षेम के विधाता, तुम्हारी जय हो, जय हो।।अ।।

किं वाचा मौनेन दिशसि यत् तेन वयं परितुष्टाः।
संप्रति लब्धं महाधनं पूर्व केवलं प्रमुष्टाः।।
जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।आ।।

कहने से क्या? मौन से जो तुम बता रहे हो, उसी से हम संतुष्ट हैं। हमें बहुत धन हाथ लगा है। पहले तो हमारी केवल लूट हो रही थी। हे धर्मनिधान, तुम्हारी जय हो। हे शान्तिमति वाले, करुणा के उद्भवस्थान, कुशल-क्षेम के विधाता, तुम्हारी जय हो, जय हो।।आ।।

त्वं रत्नं भुवनस्य वयं त्वयकैव जनेषु सरत्नाः।
आराधयितुमेव रत्नं त्वां वयं सदैव सयत्नाः।।
जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।इ।।

तुम लोक-रत्न हो। लोगों के बीच हम तुम्हीं से रत्नयुक्त हैं। तुम्हारे जैसे रत्न की उपासना करने के लिए हम सर्वदा सयत्न हैं। हे धर्मनिधान, तुम्हारी जय हो। हे शान्ति मति वाले, करुणा के उद्भवस्थान, कुशल-क्षेम के विधाता, तुम्हारी जय हो, जय हो।।इ।।

हे कारुणिक विलोक्य दृशा करुणयास्मान् क्षणमेकम्।
सफलय सुकृतमेव कृतमेकं विफलय कुकृतमनेकम्।
जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।ई।।

हे कारुणिक, अपनी करुणादृष्टि से क्षणभर के लिए हमें देखो। किया हुआ यह एक पुण्य सफल करो, तथा किए हुए अनेक अपुण्य निष्फल कर दो। हे धर्मनिधान, तुम्हारी जय हो। हे शान्तिमति वाले, करुणा के उद्भवस्थान, कुशल-क्षेम के विधाता, तुम्हारी जय हो, जय हो।।ई।।

अपराधोऽपि कृतोऽस्माभिस्ते तनुतां नाथ विनोदम्।
बालबालिकादुर्विलसितमपि कुरुते पित्रोर्मोदम्।।
जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।उ।।

हे नाथ, हमारा किया हुआ अपराध भी तुम्हें आह्लादित करें। बच्चे-बच्चियों के ऊधम से भी माता-पिता को आनन्द होता है। हे धर्मनिधान, तुम्हारी जय हो। हे शान्तिमति वाले, करुणा के उद्भव स्थान, कुशल-क्षेम के विधाता, तुम्हारी जय हो, जय हो।।उ।।

असुभाषितमप्यस्माकं जनयेन्नहि ते संतापम्।
न हि खद्योतातपः कदापि ज्वरयति कृत्वा तापम्।।

जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।ऊ।।

हमारे औचित्यहीन वचनों से तुम्हें पीड़ा नहीं होगी। जुगुनू की चमक तपाकर कभी भी ज्वर नहीं उपजाती। हे धर्मनिधान, तुम्हारी जय हो। हे शान्तिमति वाले, करुणा के उद्भव-स्थान, कुशल-क्षेम के विधाता, तुम्हारी जय हो, जय हो।।ऊ।।

यत् क्रीडया कुचेष्टितमेतत्तदप्यस्तु हर्षाय।
कुरुते यथा निदाघोपद्रव इह धारावर्षाय।।
जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।ऋ।।

क्रीड़ा के साथ यह हमारी कुचेष्टाए वैसे ही तुम्हारे हर्ष के लिए हो, जैसे ग्रीष्म का उपद्रव मूसलाधार वर्षा के लिए हुआ करता है। हे धर्मनि-धान, तुम्हारी जय हो। हे शान्तिमति वाले, करुणा के उद्भवस्थान, कुशल-क्षेम के विधाता, तुम्हारी जय हो, जय हो।।ऋ।।

सांजलिरयं नमस्कारस्ते कृतो हरतु नः पापम्।
जनयतु पुण्यं सुखसमृद्धिकरमपनेतुं संतापम्।।
जय हे धर्मनिधे।
जय जय शान्तिमते करुणाकर कुशल-क्षेमविधे।।ॠ।।

अंजलि बांध तुम्हे किया हुआ मेरा यह नमस्कार हमारे पातकों का हरण करे तथा संताप दूर करने के लिए सुख समृद्धिकारी पुण्य को उपजाए। हे धर्मनिधान, तुम्हारी जय हो। हे शान्तिमति वाले, करुणा के उद्भव-स्थान, कुशल-क्षेम के विधाता, तुम्हारी जय हो, जय हो।।ॠ।।

नत्वा बोधिमतिं सदर्पकभटा मारांगनाभिर्वृता
रोषोन्मुक्तमनोभवा धृतकरा याता रतिर्लज्जया।
ब्रह्माद्यैरभिनन्दितो द्रुमतले माराभिभूः केवलो
निर्विघ्नो हृदिभावनाभिनिरतस्तस्थौ स संबोधये।।75।।

उन बोधिमति मुनि को नमस्कार कर कामदेव के सैनिकों के साथ, काम-कन्याओं से घिरी हुई रोष हीन कामदेव को हाथ में हाथ कर रति लजाती हुई चली गई। ब्रह्मा आदि के द्वारा अभिनन्दित केवल वे मारजित्, बोधि के लिए बिना विघ्नबाधा के हृदय में भावना करते हुए तल्लीन,

बोधिवृक्ष के नीचे रह गए।।75।।

पूर्वां जन्मपरम्परामवजगामादौ त्रियामामुखे
निश्चिक्ये तदिदं जगत् समनुजं संसारशीलाध्रुवम्।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणान् सत्त्वान् दृशा दिव्यया
सर्वं दुःखमिति प्रमामधिजगे यामे निशामध्यमे।।76।।

रात के पहले पहर में उन्हें पूर्वजन्म परम्परा का ज्ञान हुआ, जिससे उन्होंने निश्चय किया कि मनुष्य सहित यह जगत संसरणशील और अनित्य है। रात के मझले पहर में दिव्यदृष्टि द्वारा उन्होंने प्राणियों को जन्म लेते, बूढ़े होते, विपत्ति सहते और मरते हुए देखकर निश्चित रूप से जान लिया कि सब कुछ दुखमय है।।76।।

दुःखं जन्मफलं जनिर्भवकृतोपादानतोऽयं भवस्
तृष्णा चेत् समुपाददाति विषयान् तृड् वेदनासंभवा।
वित्तिः स्पर्शवशात् षडायतनतस्तन्नामरूपोद्गतं
तद्विज्ञानभवं पुनः पुनरिदं संस्कारतोऽविद्यया।।77।।

दुख जन्म का फल है। जन्म भव के कारण होता है। भव उपादान से होता है। उपादान विषयों का तृष्णा के होने से होता है। तृष्णा वेदना से होती है। वेदना स्पर्श के कारण होती है। स्पर्श षडायतन से होता है। षडायतन नामरूप से उत्पन्न होता है। नामरूप विज्ञान से होता है। विज्ञान बार-बार संस्कार से होता है। संस्कार का हेतु अविद्या है।।77।।

सर्वा दुःखपरम्परा जनिमतामेवं समावर्तते
साविद्याप्रतिरोधतः खलु भवेत् पूर्णं परावर्तिता।
नात्मा वस्तुतयात्र वित्तिरखिला नैकाश्रयाथो कृतिः
स्कन्धानां परिवर्तनैव यदसावात्मा यदेतज्जगत्।।78।।

इस प्रकार जन्म लेने वालों की दुखपरम्परा की बार-बार आवृत्ति होती रहती है। अविद्या के निरोध से इस दुख परम्परा को पूर्ण रूप से उलटाया जा सकता है। परमार्थ में यहां आत्मा नहीं है। सबकी सब अनुभूति तथा कृति एक के सहारे नहीं होती। यह जो आत्मा कहा जाता है या जगत् कहा जाता है, वह सब स्कंधों का केवल परिवर्तन (की धारा) है।।78।।

मार्गो दुःखपरम्परापहतयेऽभ्यस्तोऽसहायेन यो
भोगक्लेशविवर्जितः स गुणवान् योगक्षमो मध्यमः।

यात्मानात्मविवर्जिता च तथता लब्धा मया साधुना
याता रात्रिरयं प्रभाकृदुदितः बुद्धोऽस्म्यहं सांप्रतम्।।79।।

दुःख-परम्परा के नाश का मार्ग वही है जिसका मैंने अकेले अभ्यास किया है, जिसमें न भोग है, न क्लेश है। वह योग के लिए उचित गुणवान मध्यम मार्ग है और जो आत्मा और अनात्मा से रहित तथता है, उसे मैंने अभी साक्षात कर लिया है। रात बीच चुकी, प्रभाकर का उदय हो गया। अब मैं बुद्ध हूं।।79।।

बुद्धः

दुःखे दुःखसमुदये दुःखनिरोधे मार्गे दृष्टिः।
यस्य यथार्थज्ञानवती तस्मिन् नित्या सुखवृष्टिः।।
बोधिरबोधि विशुद्धा।
दुःखानां या परम्परा सा सकलैवाद्य निरुद्धा।।अ।।

दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध, और (आर्य) मार्ग में जिसकी दृष्टि सम्यक ज्ञान वाली होती है, उसके ऊपर निरन्तर सुखवृष्टि होती रहती है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दुःखों की जो परम्परा थी, वह आज पूरी की पूरी रुक गई।।अ।।

नैष्काम्येन समेतो हिंसाव्यापादने वियुक्तः।
यस्य भवति नित्यं संकल्पः स भवति दुःखविमुक्तः।।
बोधिरबोधि विशुद्धा।
दुःखानां या परम्परा सा सकलैवाद्य निरुद्धा।।आ।।

जिसका संकल्प सर्वदा निष्काम भाव का होता है, जिसमें हिंसा (पीड़न) की भावना नहीं होती; व्यापाद (हनन) का भाव नहीं रहता, वह सर्वथा दुःख से मुक्त हो जाता है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दुःखों की जो परम्परा थी, वह आज पूरी की पूरी रुक गई।।आ।।

मृषापरुषसंभिन्नपिशुनवादाद् योऽस्ति प्रतिविरतः।
वचनं सम्यक् तस्य जायते मोदस्तस्याविरतः।।
बोधिरबोधि विशुद्धा।
दुःखानां या परम्परा सा सकलैवाद्य निरुद्धा।।इ।।

जो झूठ नहीं बोलता, कड़ी बात नहीं कहता, बेकार की बात नहीं करता, चुगली को जो छोड़ चुका है, उसकी वाणी सम्यक् होती है और उसे अविरत आनन्द होता है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दुःखो की जो परम्परा थी, वह आज पूरी की पूरी रुक गई।।इ।।

प्राणघातपरवस्तुहरणकामापचारदुष्कृत्यम्।
यो न करोति सुखं तस्यैव कृतं तस्यैव सुकृत्यम्।।
बोधिरबोधि विशुद्धा।
दुःखानां या परम्परा सा सकलैवाद्य निरुद्धा।।ई।।

जो जीवहत्या नहीं करता, दूसरे की वस्तु नहीं चुराता, मिथ्या काम सेवन का दुष्कर्म नहीं करता, उसको सुख मिलता है। उसके लिए कार्य पुण्य कार्य होते है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दुःखों की जो परम्परा थी, वह आज पूरी की पूरी रुक गई।।ई।।

हिंसा येन जायते तं न च कुरुते यो व्यवहारम्।
मद्यशस्त्रपशुसूनाविरताद् विरतो याति स पारम्।।
बोधिरबोधि विशुद्धा।
दुःखानां या परम्परा सा सकलैवाद्य निरुद्धा।।उ।।

जो मद्य, शस्त्र, पशु एवं वधस्थान के व्यवसाय से विरत है, जिस व्यवहार से लोकपीड़ा होती है, उसे नहीं करता है, वह दुःख के पार पहुंचता है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दुःखों की जो परम्परा थी, वह आज पूरी की पूरी रुक गई।।उ।।

कुशले यः सम्यग्व्यायामं कुशलाधिक्यं कुरुते।
स सुखी मतिर्न यस्याकुशले योऽकुशलं परिहरते।।
बोधिरबोधि विशुद्धा।
दुःखानां या परम्परा सा सकलैवाद्य निरुद्धा।।ऊ।।

पुण्य के लिए जो उत्तम प्रयत्न करता है, पुण्य को जो बढ़ाता है, जिसकी मति अपुण्य की ओर नहीं जाती, जो अपुण्य का त्याग करता है, वह सुखी होता है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दुःखों की जो परम्परा थी, वह आज पूरी की पूरी रुक गई।।ऊ।।

मलिने देहे सुखदुःखयोर्न यो मूर्छितः सुयुक्तः।
कायेन्द्रियचित्तयोः सदोद्धतयोर्न वशे स विमुक्तः।।

बोधिरबोधि विशुद्धा।
दुःखानां या परम्परा सा सकलैवाद्य निरुद्धा।।ऋ।।

इस मलिन शरीर में, सुख एवं दुख में जो सुध-बुध नहीं खोता, चित्त को संभाले रहता है, तथा जो उधमी काय की इन्द्रियों और ऊधमी चित्त के वश में नहीं रहता, वह विमुक्त हो जाता है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दुःखों की जो परम्परा थी, वह आज पूरी की पूरी रुक गई।।ऋ।।

एकाग्रं कुरुते यश् चित्तं मैत्रीकरुणायुक्तम्।
स च जागर्ति स्वपिति सुखं पदमेति च दुःखविमुक्तम्।।
बोधिरबोधि विशुद्धा।
दुःखानां या परम्परा सा सकलैवाद्य निरुद्धा।।ॠ।।

जो चित्त को मैत्री तथा करुणा के योग में तन्मय कर देता है, वह सुख से जागता है, सुख से सोता है, दुःखहीन पद को प्राप्त करता है। अत्यन्त शुद्ध बोधि का बोध हो गया। दुःखों की जो परम्परा थी, वह आज पूरी की पूरी रुक गई।।ॠ।।

मार्गं भावयते विमुक्तमनसे कारुण्यचर्यावते
भिक्षायां मधु भल्लिकत्रपुषयोर्दत्तं शुभं गृह्णते।
याच्ञां ब्रह्मकृतां प्रवक्तुममृतं मञ्जूररीकुर्वते
बुद्धश्रीविजितोपकाय चरते बुद्धाय कुर्मो नमः।।80।।

हमारा उन बुद्ध को नमस्कार हो, जो विमुक्त मन के है, जिनकी चर्या करुणा वाली है, जो मार्ग की भावना करते हैं, जो भिक्षा में त्रपुष और भल्लिक का दिया मधु-पिण्ड ग्रहण करते है, धर्मामृत का प्रवचन करने के लिए ब्रह्मा की प्रार्थना को जो भली-भांति स्वीकार करते हैं, जो अपनी बुद्धश्री से उपक (नामक आजीवक) को मुग्ध करते है, तथा चारिका कर रहे हैं।।80।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
माराविजयाभिधानोऽष्टमः
प्रसंगः।।

नवमः प्रसंगः

संघप्रतिष्ठापनम्

आषाढ्यां प्रविवर्तयन् मृगवने धर्मस्य चक्रं जिनः
सम्यक् सत्यचतुष्टये विधृतवान् कौण्डिन्यमुख्यान् मुनीन्।
काश्यां पंचमुनेर्गणः स्मरजिता योऽयं प्रतिष्ठापितो
लोकानां हितसौख्यकृत् स ववृधे सामग्र्यभावोन्मुखः।।81।।

आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन मृगदाव में धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हुए भगवान बुद्ध ने कौण्डिन्य आदि (पांच) मुनियों को चार आर्यसत्य में भलिभांति स्थिर किया। मार के विजेता भगवान् ने काशी में यह जो पंच मुनियों के भिक्खुसंघ की प्रतिष्ठा की, वह लोगों के ऐक्यभाव की ओर प्रेरित कर, उनका हितकारी एवं सुखकारी होकर बढ़ने लगा।।81।।

धर्मो जातिविवेचनं न कुरुते धर्मो गुणानीक्षते
धर्मेणार्यगतिं जनोऽत्र लभते यो धर्मवान् स द्विजः।
धर्मो भेदमपोह्य मानवगणान् एकान्वयं लम्भयन्
उद्भुतः सुगताश्रयो दिशि दिशीत्याकर्णितोऽभूद् रवः।।82।।

धर्म जाति की खोज-बीन नहीं करता। धर्म गुण देखा करता है। धर्म से लोगों को आर्यभाव (बौद्ध साधना की चार सीढ़ियां सोतापत्ति, सकदागामि, अनागामि और अरहत्त) की प्राप्ति होती है। जो धर्मवान् है, वही ब्राह्मण है। धर्म मनुष्यों के समूहों के भीतर का भेद-भाव दूर कर उन्हें एक ही वंश का बना देता है। ऐसा धर्म बुद्ध के आश्रय से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार का शब्द (कीर्ति, प्रचार, शोर, वार्ता) दिशाओं-दिशाओं में लोगों को सुनने को मिला।।82।।

धर्मो ब्राह्मणशूद्रकैरधिगतो हीनोत्तमैर्मध्यमैर्
लोकैः पीतसितासितैर्विविधवाक्वर्णाकृतिभ्राजितैः।

सर्वे तेऽन्तरतो दयालुमनसोऽन्यान्योपकारे रताः
स्वल्पं भुक्तिकृतोऽपि मुक्पिरमा बोधिं श्रिताः सर्वशः।।83।।

लोगों ने धर्म ग्रहण किया और उनमें ब्राह्मण शूद्र सभी उत्तम मध्यम तथा हीन, गोरे-काले-पीले विविध भाषाओं के बोलने वाले, विभिन्न वर्ण-जाति वाले, विभिन्न प्रकार के आकार वाले लोग सम्मिलित हो गए। वे सब भीतर में दयालु मनवाले हो गए, एक-दूसरे के उपकार में लग गए, थोड़ा सा भोग करने पर भी वे सब मुक्ति परायण हो गए, सब प्रकार से बोधि का सहारा उन्होंने ग्रहण किया।।83।।

संघो धर्मपरायणो जिनसुतोऽनागारिको निःस्पृहो
भिक्षावृत्तिरिह त्रिचीवरबहिस्त्यागोन्मुखः पण्डितः।
विद्यादानविचक्षणः करुणया सामग्र्यशिक्षामुखाद्
एकां मानवमात्रतां विहितवान् विश्वैकनीडां शुभाम्।।84।।

भगवान का धर्म परायण विद्यादान में चतुर पण्डित, पुत्रभूत, संघ ने घर-बार छोड़कर वीतराग होकर, भिक्षावृत्ति से निर्वाह तथा तीन चीवरों को छोड़ अपने पास की अन्य वस्तुओं का त्याग करने के लिए उद्यत होकर, करुणा से एकता की शिक्षा के द्वारा एकअद्वितीय पवित्र मानवमात्रता का निर्माण किया जिसमें संपूर्ण विश्व शरण ग्रहण कर सके।।84।।

मूढानां परिकल्पितं च मलिनं यज्जातिवादादिकं
तत्संपूर्णमपोढवाञ्जगति योऽभ्यागारिकाणां गणः।
सन्धौ पंक्त्यविभेदधीः स्वकरणे मुक्तश्च जातिग्रहाद्
बद्धान् बन्धुतयाखिलान् विहितवान् एकान्वयान् भूजनान्।।85।।

अभ्यागारिकों का गृहस्थों का जो गण हुआ वह मूढों के द्वारा परिकल्पित जाति आदि की जो घिनोनि प्रथा थी, उससे पूर्ण रूप से रहित हो गया, सह भोज में उसने पंक्तिभेद की भावना न रहने दी, कन्या लेने-देने में उसने जाति-बंधन को तोड़ डाला, उसने पृथ्वी के सब लोगों को एक-भाईचारे के बंधन में बांधकर एक वंश का बना दिया।।85।।

नार्यो यत्र यथा नरा सुविवृता दारा यथा दारिका
जात्यार्देन कदर्थना न कलुषं दैवज्ञमिथ्यामतम्।
कारुण्यादविहिंसया च सकलैवाजीववृत्तिर्मता
धर्मे लोकहितैकलक्ष्यपरमे तस्मिन् स्थिताः सौगताः।।86।।

जिसमें स्त्रियां वैसी ही स्वतंत्र है, जैसे पुरुष, जिसमें बहुएँ वैसी ही स्वतंत्र हैं, जैसी कन्याएँ जिसमें जाति आदि की पीड़ा नहीं है, जिसमें ज्योतिषियों के मिथ्या मत का गन्दापन नहीं है, जिसमें करुणा में अहिंसा के द्वारा सबकी सब आजीविका करने का विधान है, जिसका लक्ष्य एकमात्र लोक का कल्याण करना है, उस धर्म में सुगत के भक्तों की निष्ठा है।।86।।

मुक्तिं लब्धमना लघु प्रयतते कोऽप्यत्र धर्मे गृहे
शुद्धाजीवमहिंसया प्रकुरुते विद्वान् विरक्तो मृदुः।
गेहं कोऽपि विहाय मुक्तिपरमः साधुः पुमान् स्त्रीजनः
जीवन् केवलभिक्षया विहरति प्राज्ञो निवृत्युन्मुखः।।87।।

कोई स्त्री जात अथवा पुरुषजन इस धर्म में शीघ्र मुक्ति पाने के लिए घर में ही मृदु होकर, विरक्त होकर, अहिंसा से शुद्ध जीविका करते हुए रहता है, कोई बुद्धिमान स्त्रीजन या पुरुषजन घर-बार छोड़कर केवल भिक्षा से जीवन बिताता है। उसी निवृत्तिमार्ग में उद्योग करता हुआ मुक्तिपरायण होकर विहार करता है।।87।।

चरत्यकुशणाद् विरतः
कलिमलमिदमिति रागाद् दूरे।
अहमिव जन इति करुणापूरे।।
चरत्यकुशलाद् विरतः।
संयोजनमेकैकं छित्वा बोधिक्षेमरतः।।अ।।

यह दुनिया कलह की गंदगी है ऐसा सोच उसके प्रेम से दूर रहता है, जैसा मैं हूं-वैसा ही दूसरा आदमी है यह सोच करुणा के प्रवाह बहाता रहता है। वह अकुशल से-पाप से विरत हो आचरण करता है, एक-एक संयोजन (=भवबंधन) काट बोधिक्षेम में लीन रहता है।।अ।।

भजते नित्यमिदं-प्रत्ययताम्।
अविमूढस् त्रिरत्नमाश्रयताम्।।
चरत्यकुशलाद् विरतः।
संयोजनमेकैकं छित्वा बोधिक्षेमरतः।।आ।।

सर्वदा इदंप्रत्ययता का इसके होने से यह होता है इस प्रकार की कारण-कार्य परम्परा की भावना करता रहता है और त्रिरत्न की शरण जाने

वालों के बीच मोह हीन हो जाता है। वह अकुशल से पाप से विरत हो आचरण करता है, एक-एक संयोजन (=भव बंधन) काट बोधिक्षेम में लीन रहता है।।आ।।

सुधीस्त्रिरत्ने न च पाषण्डम्।
भित्त्वा विनिर्गतो ब्रह्माण्डम्।।
चरत्यकुशलाद् विरतः।
संयोजनमेकैकं छित्वा बोधिक्षेमरतः।।इ।।

वह तीनों रत्नों में सुमतिमान् होता है, उसमें पाखण्ड नहीं रहता। ब्रह्माण्ड का भेद न कर सुषुम्ना एवं मस्तिष्क प्रधान पिण्ड में प्रतिबिम्बित ब्रह्माण्ड का ध्यान द्वारा भेदन कर बाहर निकल जाता है। वह अकुशल से, पाप से विरत हो आचरण करता है, एक-एक संयोजन (=भवबंधन) काट बोधिक्षेम में लीन रहता है।।इ।।

उपरिस्थितोऽवपश्यति नीचैः।
रागक्लिष्टोऽप्येति प्रोच्चैः।।
चरत्यकुशलाद् विरतः।
संयोजनमेकैकं छित्वा बोधिक्षेमरतः।।ई।।

ऊपर ठहर कर वह नीचे निहारता है, राग से कुछ गँदला होते हुए भी वह ऊपर ही जाता है। वह अकुशल से, पाप से विरत हो आचरण करता है, एक एक संयोजन (=भवबंधन) काट बोधिक्षेम में लीन रहता है।।ई।।

उच्चैरुच्चैरुच्चैर्याति।
नीचैः पश्यति न चावयाति।।
चरत्यकुशलाद् विरतः।
संयोजनमेकैकं छित्वा बोधिक्षेमरतः।।उ।।

वह ऊपर-ऊपर-ऊपर जाता है, नीचे निहारता है, पर नीचे नहीं जाता। वह अकुशल से, पाप से विरत हो आचरण करता है, एक-एक संयोजन (=भवबंधन) काट बोधिक्षेम में लीन रहता है।।उ।।

उच्चैर्गतोऽपि नोच्चै रज्यति।
नीचैः सममुच्चैश्च विरज्यति।।
चरत्यकुशलाद् विरतः।
संयोजनमेकैकं छित्वा बोधिक्षेमरतः।।ऊ।।

उच्च पद पर पहुंच कर उच्च पद के साथ अनुरक्त नहीं होता। जैसे वह नीचली दुनियां से विरक्त रहता है, वैसे ही वह ऊंची दुनिया से विरक्त रहता है। वह अकुशल से, पाप से विरत हो आचरण करता है, एक-एक संयोजन काट बोधिक्षेम में लीन रहता है।।ऊ।।

विरते रागे चित्तं शान्तम्।
ममताभावे मनः प्रशान्तम्।
चरत्यकुशलाद् विरतः।
संयोजनमेकैकं छित्वा बोधिक्षेमरतः।।ऋ।।

राग से उपराम (विरत) हो जाने के कारण उसका चित्त शान्त होता है, ममता के न रहने से मन उसका प्रशान्त रहता है। वह अकुशल से, पाप से विरत हो आचरण करता है, एक-एक संयोजन काट बोधिक्षेम में लीन रहता है।।ऋ।।

मानः को न्वहमित्यपि यातः।
विद्याया उदयः संजातः।।
चरत्यकुशलाद् विरतः।
संयोजनमेकैकं छित्वा बोधिक्षेमरतः।।ॠ।।

मान की बात ही क्या? मैं हूं यह भाव ही उसका चला जाता है, विद्या का उदय हो जाता है। वह अकुशल से, पाप से विरत हो वह आचरण करता है, एक-एक संयोजन (=भवबंधन) काट बोधिक्षेम में लीन रहता है।।ॠ।।

उच्चैर्वास्तु न देशकालपरिधिः क्लेशक्षयान्निर्वृतिर्
यस्यास्ते स सुखी विमुक्तिममृतं पीत्वा कृती सर्वथा
अन्यो नीरस एव मोक्ष इतिधीः सर्वोपकारे रतः
श्राम्यन् यापयतीह बुद्धपरमो बुद्धात्मजो बोधिगः।।88।।

देश और काल के घेरे से अलग, उच्च पद, क्लेश के क्षय होने से निर्वाण कहा जाता है। वह जिसे प्राप्त है, वह सुखी है, विमुक्ति-रूपी अमृत पीकर वह सब प्रकार से कृती (अब उसे कुछ करना नहीं) है। पर (साधक का) मोक्ष नीरस है इस प्रकार सोचता है और सबके उपकार में रत हो श्रम करता हुआ जीवन बिताता है। यहां (यह) बुद्धपुत्र बोधि के लिए चल पड़ता है और बुद्ध होकर ही रुकता है।।88।।

एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्

पचते स्वयं स्वयं परिभुंक्ते नान्यस्मै यो दाता।
एवं स्वार्थी विश्वजननां न भवति भाग्यविधाता।।
एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्।
सर्वे यदा निमग्नाः पारं प्राप्तेनापि फलं किम्।।अ।।

जो स्वयं पकाता है, स्वयं खाता है, दूसरे को जिसे देना नहीं है, वह स्वार्थी विश्व के मानवों के भाग्य का विधाता नहीं बन सकता। एक के तर जाने से क्या फल? जब सब डूब गए, तब एक को पार मिला भी तो उसका क्या फल?।।अ।।

आत्मानं त्रातुं यो दुःखाद् विजने याति विहर्तुम्
किं शीलेनोदितं न चित्तं यस्य जनानुपकर्तुम्।।
एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्।
सर्वे यदा निमग्नाः पारं प्राप्तेनापि फलं किम्।।आ।।

जो दुख से अपने को बचाने के लिये एकान्त में चला जाता है और जिसमें लोकोपकार के निमित्त चित्तोत्पाद नहीं होता, उसके शील से क्या? एक के तर जाने से क्या फल? जब सब डूब गये तब एक को पार मिला भी तो उसका क्या फल?।।आ।।

विजने तरुभिर्मैत्रीं कृत्वा तपसा वृद्धायुष्यः।
क्षमी सदा संपूज्यः किन्तु स चैत्यो नैव मनुष्यः।।
एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्।
सर्वे यदा निमग्नाः पारं प्राप्तेनापि फलं किम्।।इ।।

एकान्त (वन) में वृक्षों के साथ मैत्री करके दीर्घायुष्य क्षमावान् (तपस्वी) सर्वदा पूजा का भाजन है, पर वह चैत्यभूत है, मानव नहीं। एक के तर जाने से क्या फल? जब सब डूब गए तब एक को पार मिला भी तो उसका क्या फल?।।इ।।

कुरुते योऽत्र परार्थोपेक्षामात्मार्थं यः कुरुते।
वीरभावमुपदर्शयता किं तेन न कः स्वं कुरुते।।
एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्।
सर्वे यदा निमग्नाः पारं प्राप्तेनापि फलं किम्।।ई।।

जो आत्मार्थ करता है और परार्थ की उपेक्षा कर देता है, उसके वीर्य-बल प्रदर्शन से क्या? अपना काम कौन नहीं करता? एक के तर जाने से क्या फल? जब सब डूब गए, तब एक को पार मिला भी तो उसका क्या फल?।।ई।।

किं नो विजने तनुतां चित्तं ध्यानसुखेन सनाथम्।
विजनोन्मुखं करोत्वन्यानपि त्यक्त्वा लोकानाथम्।।
एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्।
सर्वे यदा निमग्नाः पारं प्राप्तेनापि फलं किम्।।उ।।

अनाथ लोक का त्याग कर कोई एकान्त (वन) में अपने चित्त को ध्यान सुख से सनाथ करे और दूसरों को भी एकान्त का प्रेमी बनाए तो उससे हमारा क्या? एक के तर जाने से क्या फल? जब सब डूब गए तब एक को पार मिला भी तो उसका क्या फल?।।उ।।

किं विद्यामुक्तेन तेन नो बन्धनबद्धे लोके।
न समार्थी यो भवत्यशोकः सकले जगति सशोके।।
एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्।
सर्वे यदा निमग्नाः पारं प्राप्तेनापि फलं किम्।।ऊ।।

शोक वाली दुनिया में जो शोक रहित है, दुनिया का समनार्थी नहीं है, बंधन से बंधी हुई दुनिया में जिसने विद्या द्वारा स्वयं मुक्ति पाली है, उससे हमारा क्या? एक के तर जाने से क्या फल? जब सब डूब गए तब एक को पार मिला भी तो उसका क्या फल?।।ऊ।।

सुकृतं धनं परार्थं यस्य परार्थं यस्य शरीरम्।
वीरः स इह महावीरं खलु वन्दे तं वरवीरम्।।
एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्।
सर्वे यदा निमग्नाः पारं प्राप्तेनापि फलं किम्।।ऋ।।

जिसका धन परार्थ है, जिसका पुण्य परार्थ है, जिसका शरीर परार्थ है, यहां वह वीर है महावीर है। उस श्रेष्ठ वीर की मैं वन्दना करता हूं। एक के तर जाने से क्या फल? जब सब डूब गए तब एक को पार मिला भी तो उसका क्या फल?।।ऋ।।

त्यक्तकामिनीकांचनमपि विजनस्थमकिंचनमार्यम्।
वन्दे विगतस्पृहं सदा चैत्योपमानसत्कार्यम्।।

एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्।
सर्वे यदा निमग्नाः पारं प्राप्तेनापि फलं किम्।।ॠ।।

जिसने कामिनी-कांचन छोड़ दिया है, जो एकान्त (वन) में जो रह रहा है, जो अकिंचन है जिसमें स्पृहा नहीं है, जो सर्वदा चैत्य के समान सत्कार के योग्य है, उस आर्य (श्रेष्ठ, साधना की चार सीढ़ियों वाला) की भी मैं वंदना करता हूं। पर एक के तरने से क्या फल। जब सब डूब गए तब एक को पार मिला भी तो उसका क्या फल?।।ॠ।।

निःसंगाः कृतकृत्यतामुपगता ये सन्ति वीतस्पृहा
ये वा सन्ति परोपकारनिरता लोकोन्मुखाः साधवः।
ते चैते द्वितये जनेष्वहरहः कुर्वन्ति यामाशिषं
साशीः सिद्ध्यतु सर्वमत्र जगतां भूयाद् भवे मंगलम्।।89।।

जो आसक्ति रहित है, कृतकृत्य हो चुके हैं, एवं वीतराग हैं तथा जो लोक परायण एवं परोपकार में निरत सत्पुरुष है, वे दोनों ही लोगों के विषय में जिस प्रकार की मंगल कामना करते है, वह मंगल-कामना सफल हो, यहां लोगों का जगत् (दुनिया) में सब मंगल हो।।89।।

राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्

नदीमातृका पृथ्वी विलसतु सुखदायिनी सुभिक्षा।
देवो वर्षतु काले लोके धर्म्या प्रसरतु शिक्षा।।
राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्।
राष्ट्रजनोऽपि धर्ममतिरखिलो मिथो हितात्मा भवतात्।।अ।।

पृथ्वी नदीमातृका हो नहरों से सींची जाने लगे, वह सुख देने वाली हो और सुभिक्ष हो। देव समय पर वृष्टि करें और लोक में धर्मशिक्षा फैले। राष्ट्रपति धर्मनिष्ठ हों तथा सब राष्ट्र के निवासी धर्मबुद्धि से एक दूसरे के हितैषी हों।।अ।।

धर्मेणैव विना दण्डेन विना शस्त्रेण च शास्ता।
लोकपतिर्लोकानां भूयात् सौभाग्यस्य विधाता।।
राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्।
राष्ट्रजनोऽपि धर्ममतिरखिलो मिथो हितात्मा भवतात्।।आ।।

लोगों के लोक नेता बिना दंड के, बिना शस्त्र के, केवल धर्म से शासन करें, उनके सौभाग्य के विधायक बने। राष्ट्रपति धर्मनिष्ठ हों तथा सब राष्ट्र के निवासी धर्म-बुद्धि से एक दूसरे के हितैषी हों।।आ।।

युद्धाद् विरतिरस्तु लोकेऽस्मिन् शान्तिर्भुवि प्रसरतात्।
निरामिषाभ्यवहारा जगती प्राणिवधाच्च विरमतात्।।
राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्।
राष्ट्रजनोऽपि धर्ममतिरखिलो मिथो हितात्मा भवतात्।।इ।।

इस लोक में युद्ध से विरति हो, पृथ्वी पर शान्ति फैले। दुनिया निरामिष भोजन करे और प्राणिवध बंद हो। राष्ट्रपति धर्मनिष्ठ हों तथा सब राष्ट्र के निवासी धर्मबुद्धि से एक दूसरे के हितैषी हों।।इ।।

विवृतद्वारा गृहा भवन्तु स्तैन्यं जनाद् व्यपेयात्।
अन्न-पान-भैषज्य-वसन-निवसनं समृद्धिमुपेयात्।।
राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्।
राष्ट्रजनोऽपि धर्ममतिरखिलो मिथो हितात्मा भवतात्।।ई।।

घर के द्वार खुले हों, दुनिया से चोरी उठ जाए। अन्न, पेय, भैषज्य, वस्त्र तथा निवास स्थान प्रचुर सुलभ हों। राष्ट्रपति धर्मनिष्ठ हों तथा सब राष्ट्र के निवासी धर्मबुद्धि से एक दूसरे के हितैषी हों।।ई।।

स्त्रियः स्वतंत्रा विचरन्त्वभया बालबालिकाः प्रीताः।
न स्वैरिणश्चरन्तु नापि स्वैरिण्यः समे विनीताः।।
राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्।
राष्ट्रजनोऽपि धर्ममतिरखिलो मिथो हितात्मा भवतात्।।उ।।

लड़के-लड़कियां, तथा स्त्रियां प्रीति के साथ निर्भय होकर स्वतंत्र विचरण करें। सब लोग विनीत हों, कहीं न अनाचारी पुरुष घूमें, न अनाचारी स्त्रियां। राष्ट्रपति धर्मनिष्ठ हों तथा सब राष्ट्र के निवासी धर्मबुद्धि से एक दूसरे के हितैषी हों।।उ।।

सत्यभाषिणः सत्ये प्रितिताः सत्येनैव चरन्तः।
उपकुर्वन्तः परस्परं सन्त्वत्र जनाः विहरन्तः।।
राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्।
राष्ट्रजनोऽपि धर्ममतिरखिलो मिथो हितात्मा भवतात्।।ऊ।।

यहां लोग सत्यभाषी हों, सत्य में प्रीति करने वाले हों, सत्य से व्यवहार करने वाले हों, परस्पर उपकार करते हुए विहरण करने वाले हों। राष्ट्रपति धर्मनिष्ठ हों तथा सब राष्ट्र के निवासी धर्म बुद्धि से एक दूसरे के हितैषी हों।।ऊ।।

बुद्धिहरं यत् पापकरं यद् येन प्रमाद्यति लोकः।
तन्मद्यं परिवर्ज्य सुखी सर्वो भवताद् गतशोकः।।
राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्।
राष्ट्रजनोऽपि धर्ममतिरखिलो मिथो हितात्मा भवतात्।।ऋ।।

जो मति हर लेता है, जो पापकारी है, जिसके कारण लोग प्रमत्त होते हैं, सुध-बुध खो बैठते हैं, उस मद्य को छोड़कर सब लोग शोकरहित एवं सुखी हों। राष्ट्रपति धर्मनिष्ठ हों, तथा सब राष्ट्र के निवासी धर्मबुद्धि से एक दूसरे के हितैषी हों।।ऋ।।

कल्याणं जगदस्तु जनानां सभा भवतु कल्याणी।
सिद्धमस्तु मित्रं कल्याणं वाक् सिद्ध्यतु कल्याणी।
राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्।
राष्ट्रजनोऽपि धर्ममतिरखिलो मिथो हितात्मा भवतात्।।ॠ।।

जगत् कल्याणमय हो, लोगों की सभा कल्याणमयी हो, मित्र कल्याणमय हों, वाणी कल्याणमयी हो। राष्ट्रपति धर्मनिष्ठ हों। तथा सब राष्ट्र के निवासी धर्म-बुद्धि से एक दूसरे के हितैषी हों।।ॠ।।

कल्याणाय सुखाय सर्वजगतां चर्याश्रमं तन्वते
कल्याणं समुपागताय सकलं धर्मं तथा शासते।
कल्याणेन च वाङ्मयेन विपुलं बुद्धागमं कुर्वते
कल्याणाधिगमाय बुद्धमतये संघाय कुर्मो नमः।।90।।

सब लोगों के कल्याण के लिए, सुख के लिए चर्या का श्रम करने वाले, संपूर्ण कल्याण धर्म पाकर उसकी शिक्षा देने वाले, कल्याण वाङ्मय के द्वारा बुद्धागम को विपुल बनाने वाले, बुद्ध में चित्त लगाने वाले, संघ को कल्याण प्राप्ति के हेतु हम नमस्कार करते है।।90।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
संघप्रतिष्ठापनाभिधानो
नवमः प्रसंगः।।

दशमः प्रसंगः

बुद्धकायलक्षणम्

लुम्बिन्यां परिपूर्य बालचरितान् आनन्दयन् बान्धवान्
दृष्ट्वा लोकमलं विहाय सकलांस्तेपे तपो दुष्करम्।
वैशाख्यामुपभुज्य पायसवरं यः श्रीसुजातार्पितं
बोधिं प्राप्य सुनिर्वृतः स भगवान् धर्मं दिशन् पातु नः।।91।।

लुम्बिनी में अपने बाल-चरित्रों को पूरा करके जिन्होंने बान्धवों को सुखी किया, दुनिया की गंदगी को देखकर सब को छोड़कर दुष्कर तपस्या की, वैशाखी के दिन श्रीसुजाता के द्वारा अर्पित उत्तम पायस का उपभोग कर बोधि पाकर सम्यक् निवृत (आनन्दित) हुए, वे धर्म की देशना करने वाले भगवान् हमारी रक्षा करें।।91।।

प्रत्यक्षः शरदामशीतिमभवन्निर्माणकायेन यो
धर्मं लोकहिताय पंचरहितान् पंचाशदब्दान् जगौ।
पश्चाद् धातुषु कारितैरगणितैः स्तूपैः स्मृतः पूजितो
बिम्बैश्चित्रपटैश्च बुद्धभगवान् क्षेमाय नः कल्पताम्।।92।।

अपने निर्माणकाय के द्वारा जो अस्सी वर्ष (यहाँ) प्रत्यक्ष रहे थे, लोकहित के लिए जिन्होंने पाँच कम पचास वर्ष तक धर्म देशना की थी, बाद में (शरीर की) धातुओं पर बनाए गए अगणित स्तूपों के द्वारा, प्रतिमाओं के द्वारा, चित्रपटों के द्वारा जिनका स्मरण एवं पूजन किया जाता है, वे बुद्ध भगवान् हमारे कुशल-क्षेम के लिए हों।।92।।

द्वात्रिंशद्वरलक्षणोऽष्टदशकैः श्रीमाननुव्यंजनैः
संभोगात्ममयोऽनभूतिविषयो बुद्धः शिशूनामपि।
गातुं यस्य मनोज्ञतां न कवयः सर्वे मिलित्वा क्षमा
गायन्त्यंशलवेन किं तु कृतिनोऽस्माकं सुखायास्तु सः।।93।।

बत्तीस उत्तम लक्षणों से युक्त, अस्सी अनुव्यंजनों से शोभायमान, संभोगकाय वाले जिन बुद्ध भगवान का बच्चे भी अनुभव कर पाते है, तथा जिनकी मनोहरता का वर्णन सब कवि मिलकर भी नहीं कर पाते, पर पुण्यवान् लोग उसका लवलेश भर गाते रहते हैं, वे भगवान हमारे सुख के लिए हों।।93।।

वरदं वरलक्षणं नमामि

नमन्तमुन्नतो दधत् समस्तलोकवंदितम्।
स्पृशामि ते पदाम्बुजं सतां सदाभिनन्दितम्।।
वरदं वरलक्षणं नमामि।
भगवन्तं मम भाग्यमहो यत् संपश्यन्नुपयामि।।अ।।

नत हुए को उन्नति पर चढ़ाने वाले, सकल लोकवंदित, सज्जनों द्वारा सर्वदा अभिनंदित मैं तुम्हारे चरणकमलों का स्पर्श करता हूं। वर देने वाले वर-लक्षण को मैं नमस्कार करता हूं। यह मेरा अहो भाग्य है, जो मैं दर्शन करता हुआ भगवान के समीप होता रहता हूं।।अ।।

तव त्रिलोकरक्षणे करे सुलक्षणाकरे।
स्थितोऽस्मि निर्भयोऽज्वरः कृपापरे कृपाकरे।।
वरदं वरलक्षणं नमामि।
भगवन्तं मम भाग्यमहो यत् संपश्यन्नुपयामि।।आ।।

करुणाचित्त करुणा के आकरभूत, सुलक्षणों के उत्पत्तिस्थानभूत, तीनों लोकों के रक्षक, तुम्हारे कृपानु हाथ की छत्र छाया में मैं निर्भय एवं निर्ज्वर होकर खड़ा हुआ हूं। वर देने वाले वर-लक्षण को मैं नमस्कार करता हूं। यह मेरा अहो भाग्य है, जो मैं दर्शन करता हुआ, भगवान के समीप होता रहता है।।आ।।

विरोचने विलोभने प्रफुल्लपद्मलोचने।
दृशैव मे समस्तशोकदुःखजालमोचने।।
वरदं वरलक्षणं नमामि।
भगवन्तं मम भाग्यमहो यत् संपश्यन्नुपयामि।।इ।।

प्रफुल्लित कमल जैसे तुम्हारे नेत्र रुचि उपजाते हैं, लुभाते हैं। वे मेरे संपूर्ण शोक और दुख के जाल को निगाह डालने भर से छुड़ा देते हैं। वर

देने वाले वर लक्षण को मैं नमस्कार करता हूं। यह मेरा अहो भाग्य है, जो मैं दर्शन करता हुआ भगवान के समीप होता रहता हूँ।।इ।।

सनीलभृंगपंकजोपमानसुंदरं मुखम्।
तनोतु मे तनौ सुखं तनोतु मे मनःसुखम्।।
वरदं वरलक्षणं नमामि।
भगवन्तं मम भाग्यमहो यत् संपश्यन्नुपयामि।।ई।।

तुम्हारा नील भ्रमरों से युक्त कमल के समान सुन्दर मुख मेरे शरीर में सुख का प्रसार करें। मेरे मन में सुख का प्रसार करें। वर देने वाले वर लक्षण को मैं नमस्कार करता हूं। यह मेरा अहो भाग्य है, जो मैं दर्शन करता हुआ भगवान के समीप होता रहता हूं।।ई।।

तवान्तरा भ्रुवं भ्रुवं प्रदक्षिणोपलांक्षितम्।
करोतु मे मनोरथं करोतु चित्तवांछितम्।।
वरदं वरलक्षणं नमामि।
भगवन्तं मम भाग्यमहो यत् संपश्यन्नुपयामि।।उ।।

दोनों भौंहों के बीच, दाहिनी ओर से घूम कर विराजमान तुम्हारा उर्णाकोष मेरे मनोरथ को सफल बनाए, मेरे मनोवांछित को सफल बनाए। वर देने वाले वर लक्षण को मैं नमस्कार करता हूं। यह मेरा अहो भाग्य है, जो मैं दर्शन करता हुआ भगवान के समीप होता रहता हूं।।उ।।

मनोरमाननच्छवी रतेर्मनोऽभिनन्दिता।
मम स्मरोपतापहारिणी सदास्तु वंदिता।।
वरदं वरलक्षणं नमामि।
भगवन्तं मम भाग्यमहो यत् संपश्यन्नुपयामि।।ऊ।।

रति ने जिसका अपने हृदय से अभिनन्दन किया, उस तुम्हारे वदन की मनोहर छवि की मैं वन्दना करता हूं, वह मेरे कामोन्माद का सर्वदा हरण करे। वर देने वाले वर लक्षण को मैं नमस्कार करता हूं। यह मेरा अहो भाग्य है, जो मैं दर्शन करता हुआ भगवान के समीप होता रहता हूं।।ऊ।।

सुवर्णगौरविग्रहः कृपैकमात्रताग्रहः।
करोतु सर्वमंगलम् स्वभावतो गताग्रहः।।

वरदं वरलक्षणं नमामि।
भगवन्तं मम भाग्यमहो यत् संपश्यन्नुपयामि।।ऋ।।

स्वभाव से ही जिनमें आग्रह नहीं है यदि कोई आग्रह है तो केवल करुणा का ही आग्रह है, ऐसे सुवर्ण के समान गौर शरीर वाले भगवान् सबका मंगल करें। वर देने वाले वर-लक्षण को मैं नमस्कार करता हूं। यह मेरा अहो भाग्य है, जो मैं दर्शन करता हुआ भगवान के समीप होता रहता हूं।।ऋ।।

मनोज्ञरूपलक्षणं प्रणीतपूर्णलक्षणम्।
दधामि मानसे जिनं सुमंगलं सुलक्षणम्।।
वरदं वरलक्षणं नमामि।
भगवन्तं मम भाग्यमहो यत् संपश्यन्नुपयामि।।ॠ।।

सुन्दर रूप और सुन्दर लक्षण वाले, उत्तम एवं पूर्ण लक्षण वाले, सुमंगल एवं सुलक्षण बुद्ध को मैं हृदय में धारण करता हूं। वर देने वाले वर लक्षण को मैं नमस्कार करता हूं। यह मेरा अहो भाग्य है, जो मैं दर्शन करता हुआ भगवान के समीप होता रहता हूं।।ॠ।।

निर्माणेन शरीरिणा भगवता मौने पदे तिष्ठता
प्येकान्तं प्रविहाय संविदधता शिष्यैः समं चारिकाम्।
यान्युक्तानि सुभाषितानि वदतां वर्येण मध्येगणं
शान्त्येकार्थपराणि तानि सुतरां सिद्धन्तु नः स्वस्तये।।94।।

मौन पद पर, अर्थात वाणी से न कहे जाने योग्य बोधिसुख पर विराजमान होते हुए भी, अपने निर्माणकाय से विहार करते हुए एकान्त वन छोड़कर शिष्यों के साथ चारिका करते हुए, प्रवचन करने वालों में श्रेष्ठ, भगवान ने (भिक्खु-भिक्खुणी, उपासक उपासिकाओं) के संघ के बीच शान्ति के एकमात्र प्रयोजन वाले जिन सुभाषितों को कहा है, वे सब हमारे कल्याण के लिए सिद्ध हों।।94।।

कृतं सुभाषितमखिलम्

बहुजनहितबहुजनसुखकरणं सकलं नृणामभीष्टम्।
सकलदुरितशमनं मंगलमयमर्थवदेवोदिद्दष्टम्।।

कृतं सुभाषितमखिलम्।
अस्ति सुभाषितमिह यत् किंचित् तज्जिनभाषितमखिलम्।।अ।।

बहुजनहितकारी, बहुजनसुखकारी, पूर्णरूप से मनुष्यों के लिए अभीष्ट, सब दुर्गतियों को शान्त करने वाले, मंगलमय एवं पूर्ण सार्थक भगवान का भाषित रहा है। भगवान का कहा सबका सब सुभाषित है। यहाँ जो कुछ भी सुभाषित है वह सब भगवान् का भाषित है।।अ।।

महाकरुणया संप्रेरितमतिविमलं सकलं धर्म्यम्।
सतां संमतं भेदभावरहितं गुणसहितं रम्यम्।।
कृतं सुभाषितमखिलम्।
अस्ति सुभाषितमिह यत् किंचित् तज्जिनभाषितमखिलम्।।आ।।

महाकरुणा से प्रेरित, अत्यन्त निर्मल, पूर्णतया धर्म से युक्त, सज्जनों द्वारा संमत, भेदभावना से रहित, गुणों से युक्त, रमणीय, भगवान् का भाषित है। भगवान् का कहा सबका सब सुभाषित है। यहां जो कुछ भी सुभाषित है, वह सब भगवान् का भाषित है।।आ।।

सकलकामतृष्णया व्यपेतं क्लेशानामुपशमनम्।
कामसदाचारस्थितिकरणं मिथ्याचारविधमनम्।।
कृतं सुभाषितमखिलम्।
अस्ति सुभाषितमिह यत् किंचित् तज्जिनभाषितमखिलम्।।इ।।

सब प्रकार की कामतृष्णा से विहीन, क्लेशों को उपशान्त करने वाला, काम सदाचार में स्थिति कराने वाला, काम मिथ्याचारों को नष्ट करने वाला, भगवान् का भाषित है। भगवान का कहा सबका सब सुभाषित है। यहां जो कुछ भी सुभाषित है, वह सब भगवान का भाषित है।।इ।।

रूपध्यानविषयकं रागं दूरीकृत्य विरागम्।
ध्यानसुखव्यसनोपविनोदनमतिनिर्मलगुणभागम्।।
कृतं सुभाषितमखिलम्।
अस्ति सुभाषितमिह यत् किंचित् तज्जिनभाषितमखिलम्।।ई।।

रूप ध्यान विषयक अर्थात् योगियों के द्वारा साक्षात् किए गए उस लोक के ध्यान से सम्बद्ध राग को दूर कर वीतराग, ध्यान के सुख का व्यसन दूर करने वाला, अत्यन्त निर्मल (मोक्ष) का गुणभागी, भगवान् का

भाषित है। भगवान का कहा सब का सब सुभाषित है। यहां जो कुछ भी सुभाषित है, वह सब भगवान का भाषित है।।ई।।

रूपारूपकामलोकानां क्षणं यथा नटरंगम्।
उपदिश्येह काम इव रूपे शमयदरूपे संगम्।।
कृतं सुभाषितमखिलम्।
अस्ति सुभाषितमिह यत् किंचित् तज्जिनभाषितमखिलम्।।उ।।

कामलोक, रूपलोक एवं अरूपलोकों का सुख नटों के रंग मंच के समान है ऐसा उपदेश कर काम के विषय की भांति रूप एवं अरूप के विषय में आसक्ति को दूर करने वाला भगवान् का भाषित है। भगवान् का कहा सबका सब सुभाषित है। यहां जो कुछ भी सुभाषित है, वह सब भगवान् का भाषित है।।उ।।

शन्त्यनुशंसनकरं भ्रान्तिहरमविहिंसायां निरतम्।
बधबन्धोद्धतयुद्धकलिकलुषदुरितापायाद् विरतम्।।
कृतं सुभाषितमखिलम्।
अस्ति सुभाषितमिह यत् किंचित् तज्जिनभाषितमखिलम्।।ऊ।।

शान्ति की अनुशंसा करने वाला, भ्रांति को दूर करनेवाला, अहिंसा में रत, मार-काट, बंधन, ऊधम, युद्ध, झगड़े फसाद की गंदगी, दुर्गति और नरक से निवृत्त हुआ भगवान् का भाषित है। भगवान् का कहा सबका सब सुभाषित है, यहाँ जो कुल भी सुभाषित है वह सब भगवान का भाषित है।।ऊ।।

परममौनमथ परमसंगं शंसत् परमगभीरम्।
सकलपरिग्रहपरिवर्जितमावर्जितसज्जनधीरम्।।
कृतं सुभाषितमखिलम्।
अस्ति सुभाषितमिह यत् किंचित् तज्जिनभाषितमखिलम्।।ऋ।।

परम-मौन और परम असंग तथा परम गंभीर (निर्वाणतत्व) को बताने वाला, सब प्रकार के परिग्रहों से रहित तथा सत्पुरुष एवं ज्ञानियों को प्रसन्न करने वाला भगवान का भाषित है। भगवान का कहा सबका सब सुभाषित है। यहां जो कुछ भी सुभाषित है, वह सब भगवान का भाषित है।।ऋ।।

जातिपंक्तिकुलभाषावर्णविभेदविहीनं धीरम्।
आत्मवदेव परस्य हितं करुणारसमयं गभीरम्।।
कृतं सुभाषितमखिलम्।
अस्ति सुभाषितमिह यत् किंचित् तज्जिनभाषितमखिलम्।।ऋृ।।

जात-पाँत, कुल, भाषा, वर्ण (आदि) नाना भेदों से रहित, बुद्धि प्रदायक, अपने समान ही पर की हितैषी, करुणा-रसमय, गंभीर भगवान का भाषित है। भगवान का कहा सबका सब सुभाषित है। यहां जो कुछ भी सुभाषित है, वह सब भगवान का भाषित है।।ऋृ।।

नित्यं योऽत्र धृतः स्वधर्मवपुषा कारित्रवान् सद्गुणो
निर्याते च विकल्पिते निगदितः कारित्रहीनोऽगुणः।
यन्निर्माणविभूतिरेव भगवान् शौद्धोदनिर्गौतमः
सिद्धस्तत्त्वविदां विदां स परमः पायादपायाज्जिनः।।95।।

जो यहाँ अपने धर्मकाय में सर्वदा विराजमान, उत्तम गुणों से युक्त तथा कर्मण्य हैं। विकल्प से रहित अवस्था में (योगी लोग) जिन्हें (स्वाभाविक काय के रूप में) अगुण एवं अकर्मण्य कह दिया करते हैं। शुद्धोदन के पुत्र भगवान् गौतम जिनको निर्माणमयी विभूति है, वे तत्वज्ञों के लिए सिद्ध, ज्ञानियों में परम ज्ञानी भगवान बुद्ध हमारी दुर्गति से रक्षा करें।।96।।

शरणमेमि भगवन्तम्

रागवन्तमिह रागविहीनस्त्वं जितवानसि लोकम्।
स्वयमशोक एतेषां नृणामपहृतवानसि शोकम्।।
शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।अ।।

तुम रागहीन हो, यहां राग वाली दुनिया को तुमने जीत लिया है। तुम स्वयं शोक रहित हो, इन मानवों के शोक को तुमने हरण कर लिया है। मैं शरण ग्रहण कर रहा हूं उन भगवान की जो स्वयं अगुण हैं, फिर भी विगुण नहीं हैं, जिनमें सब गुण सदा विराजमान रहते हैं।।अ।।

तव सामीप्यमुपेतो रुष्टः क्षणाज्जायते हृष्टः।
जितरोषेण रोषणं जितवानसि मनसा त्वं तुष्टः।।

शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।आ।।

तुम संतुष्ट हो। रुष्ट आदमी भी तुम्हारे पास आकर क्षण भर में हर्ष से भर जाता है। रोष रहित मन से तुमने रुठी हुई दुनिया को जीत लिया। मैं शरण ग्रहण कर रहा हूं उन भगवान की, जो स्वयं अगुण हैं। फिर भी विगूण नहीं हैं, जिनमें सब गुण सदा विराजमाद रहते हैं।।आ।।

अज्ञानं मोहयति न लोकं त्वमसि यदा प्रत्यक्षः।
ज्ञानगिरा त्वं मूढान् बोधितवानसि विद्याध्यक्षः।।
शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।इ।।

जब तुम आंखों के सामने रहते हो, तब अज्ञान दुनिया को मोहित नहीं कर पाता। ज्ञान की वाणी से तुम मूढ़ों को जगा देते हो। तुम विद्या के अध्यक्ष हो। मैं शरण ग्रहण कर रहा हूं उन भगवान की जो स्वयं अगुण है, फिर भी विगुण नहीं है, जिनमें सब गुण सदा विराजमान रहते हैं।।इ।।

पूर्णतया स्पर्धया विहीनस्त्वं लोकानां ज्येष्ठः।
समवृत्त्या विहरन्नप्यसमस्त्वं सर्वेषां श्रेष्ठः।।
शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।ई।।

तुम पूर्ण रूप से स्पर्धारहित हो, तुम लोकों में सबसे बड़े हों। समवृत्ति से तुम विहार करते हो, फिर भी तुम असम हो तुम्हारे समान और कोई नहीं है। तुम सबमें श्रेष्ठ हो। मैं शरण ग्रहण करता हूं उन भगवान की जो स्वयं अगुण हैं, फिर भी विगुण नहीं है। जिसमें सब गुण सदा विराजमान रहते हैं।।ई।।

दृश्यानां तव रूपं रत्नं स्मरोन्मादपरिधमनम्।
हृदये निर्मलतामुपजनयत् सकलकलिकलुषशमनम्।।
शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।उ।।

तुम्हारा रूप दृश्य वस्तुओं में रत्नभूत है, उससे कामोन्माद दूर हो जाता है, हृदय में निर्मलता उत्पन्न होती है, और सब कलि-कलुष (कलह कलंक) शान्त हो जाते हैं। मैं शरण ग्रहण करता हूं उन भगवान की जो

स्वयं अगुण हैं, फिर भी विगुण नहीं हैं, जिनमें सब गुण सदा विराजमान रहते हैं।।उ।।

यद् भाषसे श्रृणोति जनस्तत् सावधानमतियत्नम्।
श्रव्याणामुत्तमं वचस्ते भवति सुभाषितरत्नम्।।
शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।ऊ।।

जो तुम बोलते हो, उसे दुनिया अत्यन्त यत्न के साथ सावधानी से सुनती है। तुम्हारा वचन सब श्रव्यों में उत्तम है, वह सुभाषितों के बीच रत्नभूत है। मैं शरण ग्रहण करता हूं, उन भगवान् की जो स्वयं अगुण हैं, फिर भी विगुण नहीं है, जिनमें सब गुण सदा विराजमान रहते है।।ऊ।।

[1]धर्मस्तु देशितस्त्वया यस् तं मन्यन्ते सुधियः।
त्रिपिटकधृतं नमन्ति सादरं वन्दन्ते तं कुधियः।।
शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।ऋ।।

तुमने जिस धर्म की देशना की है, उसका विद्वान लोग मनन करते हैं। अविद्वान लोग त्रिपिटक में रक्षित उस धर्म (ग्रंथ) को नमस्कार करते हैं, उसकी वंदना करते है। मैं शरण ग्रहण करता हूं उन भगवान की जो स्वयं अगुण है, फिर भी विगुण नहीं हैं, जिनमें सब गुण सदा विराजमान रहते हैं।।ऋ।।

मैत्रीज्ञानविरागगुणानां धर्माणां त्वं धाता।
जय जय नाथ त्वमनाथानामसि सौभाग्यविधाता।।
शरणमेमि भगवन्तम्।
अगुणवन्तमपि विगुणविहीनं सदा सकलगुणवन्तम्।।ॠ।।

तुम मैत्री के, ज्ञान के, वैराग्य के, गुणों के धर्मों में आश्रय हो, तुम अनाथों के सौभाग्य के निर्माता हो। हे नाथ, तुम्हारी जय हो, जय हो। मैं शरण ग्रहण करता हूं उन भगवान की जो स्वयं अगुण हैं, फिर भी विगुण नहीं हैं, जिनमें सब गुण सदा विराजमान रहते हैं।।ॠ।।

आदौ शाक्यजनेषु भव्यजननं भोगैस्ततो वर्धनं
नैपुण्याच्च यशोधराधिगमनं दृष्ट्वा निमित्तान्यतः।

1. पांडुलिपि में 'धर्मो यो' पाठ है। उसके स्थान पर 'धर्मस्तु' किया गया है।

गेहान्निष्क्रमणं विजित्य मदनं लब्ध्वा च बोधिं वरां
धर्मस्थापननिर्वृतं च भगवत्संदर्शितं पातु नः।।96।।

शाक्यजनों के बीच प्रथम दिव्यजन्म ग्रहण करना, फिर भोग विलास के बीच बड़ा होना, शिल्पों में निपुण होने के कारण यशोधरा की प्राप्ति करना, फिर (चार) निमित्तों को देखकर घर से निकल पड़ना, मार विजय कर, उत्तम बोधि प्राप्त कर, धर्मप्रतिष्ठापन करना तथा निर्वृत होना ये सब भगवान के दिखाए गए दृश्य हम सबका परित्राण करें।।96।।

यस्याः प्रार्थनया मया विरचितं काव्यं सगेयैः पदैः
यास्मै संस्पृहयत्यनेन परमं लब्धे क्षणे मोदते।
याभ्यागारिकजीवने मम सखी बोधिश्रियालंकृता
सा मे काव्यमिदं गृणात्युपहृतं प्रीत्या सुजाता सुखम्।।97।।

गेयपदों से युक्त यह काव्य जिनकी प्रार्थना पर रचा गया है, जिनकी इसमें अत्यन्त स्पृहा है, जो इसके द्वारा अवसर पाने पर आनन्दित होती है, जो बोधिश्री से विभूषित मेरे अभ्यागारिक जीवन की सहचारिणी हैं, वे सुजाता इस उपहारभूत काव्य का सुख से प्रीति से गान करें।।97।।

चेतःक्लान्तिविनोदनाय मदनोन्मादव्यवच्छित्तये
रागान्धस्य जनस्य सुष्ठुवचसा धीरप्रशान्ताश्रयम्।
साकल्येन तथागतस्य चरितान्युद्गातुकामात्मना
काव्यं बुद्धपरायणेन कविना शान्त्येकसारं कृतम्।।98।।

सुन्दर वाणी के द्वारा राग से अंधे लोगों के थके मन को बहलाने के लिए, उनके काम के उन्माद को दूर करने के लिए तथागत के संपूर्ण चरित्रों का गान करने की इच्छा से, वुद्धभक्त कवि ने, धीरशान्त भगवान के आश्रय में शान्ति की अद्वितीय सार वाला यह काव्य रचा है।।98।।

रम्यं बुद्धपदं सुभाषितमयी बुद्धस्य रम्या कथा
रम्या काव्यसरस्वती गुणवती गेयैः पदैरन्विता।
रम्यो भक्ति-रसो जगद्गुरुतमं शौद्धोदनिं संश्रितः
रम्याणां समुपाश्रयेण भवताद् रम्या मदीया कृतिः।।99।।

बुद्ध का नाम रमणीय है, सुभाषितों से युक्त बुद्धकथा रमणीय है, गेय पदों से युक्त गुणवती काव्य-वाणी रमणीय है, शुद्धोदन के पुत्र,

जगद्गुरुओं में श्रेष्ठ, भगवान के आलम्बन वाला भक्तिरस रमणीय है। इन सब रमणीयों के आश्रय से बनी मेरी रचना भी रमणीय हो।।99।।

रम्यं रम्यगुणानुवादचरितैः श्रीशाक्यसिंहप्रभो
रम्यं भक्तिरसायनेन मधुरेणौजायमानं नवम्।
रम्येष्वप्यधिराजितेषु सुकवि-प्रत्नप्रबन्धेष्विदं
रम्यं रम्यमहो गृणन्ति सुजनाः स्नेहेन बुद्धोदयम्।।100।।

अहो! रम्य-रम्य। सुकवियों के पुराने रमणीय प्रबंधों के विराजमान होते हुए भी श्रीशाक्यसिंह भगवान् के रम्यगुण बखान करने वाले चरित्रों से रमणीय मधुर भक्तिरसायन ओजस्वी एवं सुन्दर इस नवीन बुद्धोदय काव्य का स्नेह से सज्जन लोग गान कर रहें है।।100।।

इति शान्तिभिक्षुशास्त्रिविरचिते श्रीबुद्धोदयकाव्ये
बुद्धकायलक्षणाभिधानो
दशमः प्रसंगः।।

श्रीबुद्धोदयकाव्यं परिनिष्ठितम्।
कृतिरियं
शान्तिभिक्षुशास्त्रिणः।।

[पुष्पिका]

प्रज्ञायां चावदाने सततमतुलिते सिंहलद्वीपभूमौ
विद्यालंकारनाम्नि प्रथित इह परे चाश्रमे सौगतानाम्।
श्रीधर्मानन्दपादैः श्रमणवरमते दीक्षितस्य द्विजातेः
काव्यं श्रीशान्तिभिक्षोः पदमुपलभतां सत्सु बुद्धोदयाख्यम्।।

यहां सिंहलद्वीप की भूमि पर प्रज्ञा और चरित्र में निरन्तर अनुपम विद्यालंकार नाम से प्रसिद्ध सौगत आश्रम में भदन्त श्रीधर्मानन्दजी के द्वारा बौद्धधर्म में दीक्षित, विप्रकुल के (पंडित) शान्तिभिक्षु (शास्त्री) का यह बुद्धोदय नाम काव्य सज्जनों के बीच स्थान प्राप्त करें।

इति सिंहलेषु भार्यासुताभ्यां सह प्रोषितस्य भदन्त श्रीधर्मानन्दनायकपादशिष्यस्योत्तरभारते कोसलेषु लक्ष्मणपुरान्तिकबीबीपुरग्रामवास्तव्यस्य लाइप्छिग् विश्वविद्यालयाल्लब्धडॉक्टरपदवीकस्य विद्यालंकारविश्वविद्यालये संस्कृतमहाचार्यस्य पण्डितश्रीशान्तिभिक्षुशास्त्रिणः साहित्याचार्यस्य कृतिः सकलजगद्गुरुतमशाक्यसिंहावदानसमलंकृतं भक्तिरसाश्राय धीररशान्तनायकोत्तमतथागतवस्तुरामणीयकरम्यं बुद्धोदयं नाम काव्यम्। शुभम्। गत-बुद्धाब्दाः 2514।

सिंहल में भार्या (सुजाता) तथा पुत्री (बोधिश्री) के साथ प्रवास करने वाले, भदन्त श्री धर्मानन्द नायकपाद के शिष्य कोसलदेश में लक्ष्मणपुर (लखनऊ) के पास के बीबीपुर ग्राम के निवासी (जर्मनी के) लाइपछिग विश्वविद्यालय से डाक्टर पद के प्राप्तिकर्ता, विद्यालंकार विश्वविद्यालय के संस्कृत विषय के प्रोफेसर पंडित श्री शान्तिभिक्षुशास्त्री साहित्याचार्य की यह जगत के सब गुरुओं में श्रेष्ठ शाक्यों में ज्येष्ठ महापुरुष के अवदान से विभूषित, भक्तिरस के आश्रयभूत धीरशान्तनायकों में उत्तम तथागत की कथा की रमणीयता से रमणीय बुद्धोदय काव्य नामक रचना समाप्त हुई। शुभ। गतबुद्धवर्ष 2514।

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः।।

तथागत ने, जो धर्म हेतु से उत्पन्न होते हैं उनके (उत्पन्न होने के) हेतु
का उनका जो निरोध है (उनके निरुद्ध होने के हेतु का),
उपदेश दिया है। यह (समरणउत्पाद-निरोध)
महाश्रमण का सिद्धांत है।

ये धर्मा हेतुप्रभवास् तेषां हेतुं तथागतो ह्यवदत्।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः।।

प्रथमं परिशिष्टम्

[ईसवीये 1988मिते वर्षे प्रकाशितायां 'विद्याभारती' पत्रिकायां मुद्रितस्य संपादकीयस्य मूलपाठ:]

सम्पादकीय

इधर पिछले कुछ शताब्दियों से सांस्कृतिक उत्थान एवं सामाजिक जागरण जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान अग्रणी रहा है। इस सन्दर्भ में विद्याभारती पत्रिका भी अपना कदम आगे बढ़ा रही है। इस पत्रिका के माध्यम से पाठकों को जिन विचार-धाराओं एवं समस्याओं से अवगत कराने का जो संकल्प था, उसमें भी कुछ आशा की किरण दृष्टिगत हो रही है। विभिन्न विचारों की संवाहिका 'विद्याभारती' इस विशेष अंक के साथ अपना दो वर्ष का वयस् पूर्ण कर अब तृतीय वर्ष में प्रवेश करने जा रही है।

यह विशेष अंक भी हमेशा की भाँति पूजा पाठ से ही प्रारम्भ होता है। स्थान अभाव के कारण इस बार पूजा-पाठ को अधिक स्थान नहीं दे पाया साथ ही इस का हिन्दी रूपान्तर भी।

सूत्रपाठ—सूत्रपाठ में इस बार 'जटासुत्तं' दिया जा रहा है। पाठकों की सुविधा की दृष्टि से साथ ही इसका भोटी रूपान्तर भी प्रस्तुत है। पर इस बार उक्त सुत्त का हिन्दी रूपान्तर नहीं दे सका। यह सूत्र सुत्तपिटक के तृतीय "संयुक्तनिकाय" के प्रथम सगाथवग्गो के अन्तर्गत तेईसवाँ (23) सुत्त है। यह सूत्र धर्म एवं दर्शन दोनों दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें बुद्ध की तीनों शिक्षाओं की सर्वांगीण साधना और अनुष्ठानों का निरूपण है। इसी की व्याख्या के रूप में प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोस ने "विसुद्धिमग्गो" नामक महान ग्रन्थ की रचना की थी।

मनुष्य किसी भी समय की अपेक्षा आज सुखी एवं समृद्ध है। इसकी आनेकानेक आवश्यकताएँ आज सुलभ हैं। यह आज जितना सुखी है, वैसा कभी नहीं था। दूसरी ओर मनुष्य आज अत्यन्त व्यस्त एवं व्याकुल है। वह आतंकित मनस्थिति में जी रहा है। इसकी भोग इच्छाओं एवं तृष्णा की गति-प्रवृत्ति में एक क्षण का भी विराम नही है। इसकी आशा आकांक्षाएँ बहुत बड़ी है। इनकी पूर्ति न होने से वह सदा दुःखी रहता है। असीम भौतिक सुख सुविधाओं के बावजूद मनुष्य अभाव में ही जी रहा है। इसने अपनी ही विनाशकारी सभी सामग्री जुटा ली। अपनी शक्ति बढ़ाने की चेष्टा में अपने ही प्रलयकारी शस्त्र तैयार कर डाला। अनादि काल से जीवन देने वाली अपनी संस्कृति समाज एवं परिवारिक जीवन के प्रति इसके मन में आज अनास्था पैदा हो गया है। मनुष्य-मनुष्य के प्रति विश्वास खोते जा रहे हैं। इस प्रकार आज मनुष्य अत्यन्त व्यस्त व्याकुल एवं संकट ग्रस्त रहस्य गुजर रहा है। वह अत्यन्त बेसहारा खौफनाक वातावरण में जी रहा है। ऐसी स्थिति में करुणामूलक जीवन दर्शन का पाठ उसके लिये संजीवनी औषधि का कार्य कर सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ "बुद्धोदय काव्य" में इसी प्रकार के जीवन दर्शन की स्पष्ट झलक दृष्टिगत होती है।

बुद्धोदय काव्य की रचना बहुत पहले ही हो चुकी थी। इधर विद्याभारती के कार्यकर्ता इसे अपकी पत्रिका में प्रकाशित करने की चेष्टा बहुत दिनों से करते रहे हैं, पर पांडुलिपि प्राप्त न होने के कारण इस कार्य में कुछ विलंब अवश्य हुआ, पर इधर ग्रन्थकार सुगतकविरत्न प्रो॰ शान्तिभिक्षुशास्त्री के सौजन्य से पांडुलिपि हस्तगत हुई। साथ ही यह अत्यन्त सुयोग एवं सुखद बात है कि बैसाखी पूर्णिमा भगवान् बुद्ध के जन्म दिन एवं बुद्धत्व प्राप्ति की शुभ बेला में इसे विद्या भारती के विशेष अंक के रूप में प्रकाशित कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का सुअवसर मिला है। यह ग्रन्थ सिद्धार्थ के जन्म से लेकर बुद्धत्व की प्राप्ति एवं धर्म चक्र प्रवर्तन पर्यन्त की घटनाओं को लेकर अत्यन्त रोचक एवं काव्य रस से परिपूर्ण गीतिकाव्य के रूप मे गुम्फित ग्रन्थ है। इसमें लेखक ने भगवान बुद्ध से सम्बद्ध उक्त घटनाओं को अत्यन्त

सरल सुबोध एवं सशक्त भाषा में गम्भीर सघन सरस भाव से प्रतिपादित किया है।

इस महत्वपूर्ण एवं अपूर्व काव्य–ग्रन्थ को विद्याभारती में प्रकाशित करने की अनुमति देकर लेखक ने पत्रिका के कार्यकर्ताओं पर जो अनुग्रह किया है, उसके लिये पत्रिका के कार्यकर्ता संपादक मण्डल हार्दिक आभार ज्ञापन करते हैं।

द्वितीयं परिशिष्टम्

श्लोकानुक्रमणिका

95. सिद्धार्थस्य वचो निशम्य, बु. का. 48
96. सेनानीतनुजाऽसमा जनपदे, बु. का. 67
97. सेनानीतनुजोपलभ्य सफलं, बु. का. 62
98. स्नेहार्द्रस् तनुते सुखानि, बु. का. 1
99. हित्वा कृच्छ्रतपः समाधिपरमे, बु. का. 66
100. हित्वा राज्यमुपाश्रिताय, बु. का. 60

तृतीयं परिशिष्टम्

गीतानुक्रमणिका

1. अमृतोपममुपनीतम्, बु. का. 68 (अ – ॠ)
2. इयं वनी सल्लयनसमीरा, बु. का. 62 (अ – ॠ)
3. एकेनोत्तीर्णेन फलं किम्, बु. का. 88 (अ – ॠ)
4. एष विषीदति रोगात्, बु. का. 35 (अ – ॠ)
5. कमनीयां सुकुमारीम्, बु. का. 22 (अ – ॠ)
6. किं रोदिषि सविषादम्, बु. का. 19 (अ – ॠ)
7. कृतं सुभाषितमखिलम्, बु. का. 94 (अ – ॠ)
8. चरत्यकुशलाद् विरतः, बु. का. 87 (अ – ॠ)
9. जनसकलमंगलम्, बु. का. 7 + वन्दे लोकपते + मधुरिह वरिवस्यति + (अ – ॠ)
10. जय हे धर्मनिधे, बु. का. 74 (अ – ॠ)
11. तपः कुर्वता नाप्तम्, बु. का. 64 (अ – ॠ)
12. त्वया वयं बहु–धन्या, बु. का. 28 (अ – ॠ)
13. द्वयंगुलधीधनया तया, बु. का. 27 (अ – ॠ)
14. न मनो मे रतिमेति, बु. का. 47 (अ – ॠ)
15. परिभूतः परमेष इदानीम्, 34 (अ – ॠ)
16. पूर्यत्यायुर्मानम्, बु. का. 38 (अ – ॠ)
17. बन्धनहीनमिदानीम्, बु. का. 45 (अ – ॠ)

18. बहुगुणमन्वेष्टुं निर्यातः, बु. का. 58 (अ – ॠ)
19. बोधिरबोधि विशुद्धा, बु. का. 79 (अ – ॠ)
20. मधुरिह वरिवस्यति, बु. का. 7 + वन्दे लोकपते (अ – ॠ)
21. यामि शरणमेवाप्तुम्, बु. का. 57 (अ – ॠ)
22. राष्ट्रपतिर्धर्मात्मा भवतात्, बु. का. 89 (अ – ॠ)
23. वन्दे लोकपते, बु. का. 7 (अ – ॠ)
24. वरदं वरलक्षणं नमामि, बु. का. 93 (अ – ॠ)
25. विरमास्माद् व्यवसायात्, बु. का. 72 (अ – ॠ)
26. शरणमेमि भगवन्तम्, बु. का. 95 (अ – ॠ)
27. सा निर्वृतात्र कान्ता, बु. का. 46 (अ – ॠ)
28. सुगतांकुरं कुमारम्, बु. का. 17 (अ – ॠ)
29. हन्त विहाय शरीरम्, बु. का. 19 + किं रोदिषि सविषादम् + (अ – ॠ)
30. हृदयारामविहारी, बु. का. 52 (अ – ॠ)

चतुर्थं परिशिष्टम्
टिप्पण्यः

प्रथम श्लोक

1. मैत्र्या– (मैत्री शब्द का तृतीया विभक्ति, एक वचन का रूप)। बौद्ध वाङ्मय में चार ब्रह्मविहार गिनाये गये हैं। वे हैं– मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। ब्रह्मविहार का अर्थ है उच्च या श्रेष्ठ भावना (ध्यान) पर रुकना या टिकना। जब कोई साधक मैत्री ब्रह्मविहार की साधना करता है, तो कहा जाता है कि सो भिक्खु मैत्रीब्रह्मविहारं विहरति। इन ब्रह्मविचहारों को 'अप्रमाण' भी कहा जाता है, क्योंकि इनकी कोई क्षेत्र-सीमा नहीं, इनको, जितना चाहें उतना, बढ़ाया जा सकता है।

2. विश्वस्ता जनतेह मातरि यथा– मिलान कीजिये– माता यथा नियं पुत्तं एकपुत्तमनुरक्खे-सुत्तनिपाते खुद्दकपाठे।

3. कारुण्य– करुणा का भाव कारुण्य है। यह करुणा ब्रह्मविहार ही है। विश्व के सारे जीवों के प्रति करुणा का भाव करुणा ब्रह्मविहार की विशेषता है। बुद्ध में यही गुण महाकरुणा कही जाती है, इसीलिये उन्हें महाकारुणिक या परमकारुणिक कहा गया है।

द्वितीय श्लोक

4. बोधिसत्त्वम्– जो सत्त्व (प्राणी) बोधि में या बोधि-प्राप्ति की प्रक्रिया में अवस्थित है; जो बोधि-प्राप्ति के लिये यत्नशील है। कालान्तर में बोधिसत्त्व शब्द का अर्थ और व्यापक हो गया और

इस प्रकार महायान परंपरा में प्रत्येक प्राणी में बोधि के बीज की अवधारणा विकसित हुई।

तृतीय श्लोक

5. दीपंकरम्– पालि आगम-ग्रन्थ बुद्धवंस में चौबीस बुद्धों की सूची दी गई है। उनमें जिनको प्रथम बुद्ध के रूप में गिनाया गया है, उनका नाम है दीपंकर। बौद्ध परंपरा में प्रायः कहा जाता है–

ये च बुद्धा अतीता च ये च बुद्धा अनागता।
पच्चुपन्ना च ये बुद्धा तेसं वन्दामि सब्बसो॥

6. बौधौ-बोधि बुद्ध का वह विशेष बोध है, जिसके कारण वे बोधिसत्त्व से बुद्ध बन गये। बुद्ध और बोधिसत्त्व में अन्तर इतना ही है कि बोधिसत्त्व बाधि-रहित है और बुद्ध बोधि-सहित हैं। दूसरे शब्दों में बुद्ध = बोधिसत्त्व+बोधि और बोधिसत्त्व = बुद्ध - बोधि।

7. श्रीघनात्– 'श्रीघन' शब्द बुद्ध का पयार्यवाची शब्द है। अमरकोश से मिलान कीजिये-मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्ता। 'श्रीघन' शब्द का शाब्दिक अर्थ है– श्री की मूर्ति। परवर्ती बौद्ध साहित्य में 'श्रीघन' शब्द बौद्ध संन्यासी या यति के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। देखिये-स्फुटार्था श्रीघनाचारसंग्रहटीका (स. संघसेन), काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना 1983.

8. प्रणिधान– बोधिसत्त्व बोधि-प्राप्ति के पहले बोधि-प्राप्ति के लिये अटूट संकल्प लेता है कि वह बोधि-प्राप्ति के विना बोधि-प्राप्ति के मार्ग से नहीं हटेगा। यह संकल्प ही प्रणिधान या प्रणिधि है।

नोट– ये टिप्पणियाँ उदाहरण मात्र हैं। इस प्रकार की अन्य टिप्पणियों के लिए बौद्ध सूत्रों (बुद्धवचनों), शास्त्रों (सूत्रों पर आचार्यो द्वारा की गई व्याख्यायें) या अन्य ग्रन्थों की सहायता ली जा सकती है।

पंचमं परिशिष्टम्

विशेषपदसूची